Chap-6

षष्ठ अध्याय

आत्मकथाओं के प्ररिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी के उपन्यासों का विश्लेषण एवम मूल्यांकन

: षष्ठ अध्याय :

: आत्मकथाओं के प्ररिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी के उपन्यासों का विश्लेषण एवम मूल्यांकन :

प्रास्ताविक :

मेरे शोध-प्रबंध का विषय है – "मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन ।" मैत्रेयीजी ने अपनी आत्मकथा को दो खण्ड़ों में लिखा है - कस्तूरी कुण्डल बसै और गुड़िया भीतर गुड़िया । "प्रथम आत्मकथा में मैत्रेयीजी ने अपनी माता कस्तूरी के जीवन-संघर्ष को आलेखित किया है । आधी-पौनी आत्मकथा तो उसीमें निकल जाती है, परंतु उसके साथ ही मैत्रेयीजी ने अपने शैशव और शिक्षाकाल तथा विवाह और उसके बाद मैत्रेयी के प्रथम पुत्री के जन्म तक की कथा को आकलित किया है । पुत्री-प्रसव पर आसपास जुटी स्त्रियों में किसीने टिप्पणी की – रेंढ़ा लौंडिया हुई है । लेखिका की टिप्पणी है – "थाली नहीं बजी, तवा बजा - एक लोमहर्षक ध्वनी उठकर डूब गई ।[1]"

यह आत्मकथा कुल 332 पृष्ठों की है । दूसरी आत्मकथा है – "गुड़िया भीतर गुड़िया"। वह 352 पृष्ठों में उपन्यस्त हुई है । समय सन् 1972 का है, जहाँ से आत्मकथा का यह दूसरा खण्ड शुरु होता है । डाक्टर साहब अलीगढ़ से दिल्ली आ जाते हैं । साथ में मैत्रेयीजी भी । साहित्य का एक विस्तृत आकाश यहाँ उनकी प्रतीक्षा कर रहा है । इसमें मैत्रेयीजी ने अपने साहित्यिक संघर्ष की कथा कही है । "स्मृतिदंश" औपन्यासिका से प्रारंभ करके सन् 2008 तक की साहित्यिक-यात्रा इसमें निरुपित है । सन् 1972 से सन् 1990 – अठारह वर्ष । साहित्यक अनुभवों को अर्जित करने का समय है । उसके बाद के अठारह वर्ष साहित्य के एक के बाद एक शिखर वह सर करती गई हैं । अनेक साहित्यक पुरस्कार और सम्मान प्राप्त करती गई, साथ ही अनेको की ईर्ष्या और हसद की शिकार भी । राजेन्द्र यादव की बीमारी और उसमें डाक्टर साहब – मैत्रेयीजी के पति - की तीमारदारी के साथ कथा विरमती है । मैत्रेयीजी नानी बन गई हैं । बेटी के भी बेटी है – वासवदत्ता, जो दिल्ली के किसी पब्लिक-स्कूल में पढ़ती है ।[2] मैत्रेयीजी अपनी साहित्यक-यात्रा में इतना आगे बढ़ गई है

। राजेन्द्र यादव उनके सम्बन्ध में लिखते है – "अगर मैं कहता हूँ कि स्वतंत्रता के बाद रांगेय राघव और फणीश्वरनाथ रेणु के साथ मैत्रेयी तीसरा नाम है, जो कथा-साहित्य में धूमकेतु की तरह आया है। तो, न तो किसी पर एहसान करता हूँ, न नए नक्षत्र की खोज का श्रेय लेना चाहता हूँ। सिर्फ उस लेखन से जुड़ना चाहता हूँ, जो हिन्दी के संकुचित फलक का विस्तार कर रहा है" ।[3] यह राजेन्द्र यादव ने कहा था अपनी पत्रिका "हंस" में । तो अशोक वाजपेयी "जनसत्ता" में लिखते हैं – "दिल्ली से झांसी और उरई की यात्रा। ... यात्रा के दौरान एक बात तो यह समझ में आई कि मैत्रेयी पुष्पा को बुंदेलखण्ड़ में अपने लेखक के रूप में व्यापक मान्यता मिली है । हमने उनका घर-गांव आदि भी देखे और वे स्थान भी, जो उनके उपन्यासों में आए है" ।[4] इन दोनों के उदाहरण हमने इसलिए दिए हैं कि एक यदि समाजवादी सोच रखता है तो दूसरा कलावादी या व्यक्तिवादी । परंतु दूसरी और कम समय में विपुल साहित्य-सृजन को लेकर कौआ-रौर भी मची हुई है। अनेक महिला लेखिकाएं भी उनके "कीचड़-उछाल" कार्यक्रम में लगी हुई हैं। कदाचित् इसीलिए राजेन्द्र यादव को कहना पड़ा – "डाक्टरनी, आज समज लो और हमेशा के लिए गांठ बांध लो, जो ऊल-जूलूल बक रहे हैं, वे तुम्हारे प्रतिद्वन्दी है। उन्हें न तुम्हारे रुप-रंग से कुछ लेना-देना है, और न तुम्हारे और मेरे सम्बन्धों की पड़ताल से । उन्हें बस भय है तुम्हारे लेखन से। कहूं कि एकदम नये और महत्वपूर्ण लेखन से। और धुंआधार अनवरत लेखन से। मैत्रेयी, हम जिसको लाख कोशिशों के बाद भी अपने काबू में नहीं कर पाते, उसके बारे में झूठी-सच्ची कहानियां प्रचारित करते हैं। स्त्री हो तो उसे अश्लील और बदचलन कहना बड़ा आसान हो जाता है । तुम लिखने से बाज नहीं आओगी और नए बिन्दु तलाशती जाओगी, तुम्हारी "सहेलियां", तुम्हें जिंदा न छोड़े तो ताज्जुब क्या है ? "सुन रही हो न ?..." रही बात मेरे और तुम्हारे सम्बन्ध की, बहुत सोचा अपने रिश्ते को क्या नाम दूं ? क्या हम आपस में ऐसे नहीं, जैसे कृष्ण और द्रौपदी रहे होगें ? बहुत आत्मीयता, बहुत भरोशा और सेक्स का लेशमात्र नहीं" ।[5] तो प्रस्तुत अध्याय में हमने यह दिखाने का यत्न किया है, कि किस तरह मैत्रेयीजी के उपन्यासों में अनेक जीवनानुभव गूथित-अनुगूथित हुए हैं । उपर्युक्त आत्मकथाओं में वर्णित जीवन-संघर्ष में, उसमे रसे-बसे जीवनानुभव ने किस तरह उनकें सृजन के पिण्ड़ को तैयार किया है। ये जीवनानुभव की पूंजी उन्हें

उनकीं सृजन-यात्रा में किस कदर सहायक हुई है। थोड़े से वर्षो में मैत्रेयीजी ऐसे-ऐसे बृहदकाय उपन्यास कैसे लिख गई उसका उत्तर भी हमें यहा मिलता नज़र आ रहा है। लेखक दो तरह के होते हैं, एक तो वह, जो जैसे-जैसे अनुभव प्राप्त करते है, वैसे-वैसे उन अनुभव को अपने उपन्यासों और कहानियों में ढालते जाते हैं। प्रेमचंद नागार्जुन, मटियानी आदि लेखक इस कोटि में आते हैं। परंतु लेखक की एक दूसरी कोटि भी होती है। अर्जित जो पहले तो अनुभवो का अर्जन करते हैं और उसके बाद सृजन की यात्रा पर निकल पड़ते हैं। रेणु और मैत्रेयी इस दूसरी कोटि में आते हैं। जिन्हें पशुपालन का अनुभव होगा वह जानते हैं कि पशु - गाय, भैंस इत्यादि – पहले तो खूब सारा खा लेते हैं और फिर बाद में अवकाश के समय में उस खाये हुए की जुगाली करते हैं। मुझे मालूम है यह प्रक्रिया, क्योंकि मैं यादव-कन्या हूं और मैत्रेयी भी आधी तो यादव-कन्या हैं ही। तो इस कैटेगरी के लेखकों का सृजन जुगाली के रूप में होता है। मैत्रेयीजी का बहुत-सारा लेखन इस प्रकार की जुगाली का लेखन है। हां इधर वह नये अनुभवों की तलाश में भी रहती है। उनकें उपन्यासों में "विज़न" तथा "गुनाह-बेगुनाह" जैसे उपन्यास, या "अल्मा कबूतरी" या कही ईसुरी फाग "जैसे उपन्यास उनके बाद के अनुभव और अध्यवसाय पर आधारित हैं।

प्रस्तुत अध्याय में हमने यह विश्लेषित करने का प्रयास किया है कि उपन्यासों में निरुपित देशकाल या परिवेश या वातावरण तथा चरित्र और घटनाएं किस तरह उनके औपन्यासिक लेखन में प्रतिबिंबित हुई हैं। आत्मकथाओं में जिया हुआ उनका जीवन उन्हें उनके औपन्यासिक सृजन में किस तरह काम आया है। पहले अनुभव प्राप्त करना, फिर उसे अभ्यास की खराद पर चढ़ाना और फिर कलात्मक लेखन के क्षेत्र में आना, यह एक प्रक्रिया है, जिसे मैत्रेयीजी ने अंगीकृत किया है। और ऐसे लेखक फिर दूसरों की तुलना में कम समय में विपुल की रचना कर सकते हैं क्योंकि "कच्चा माल" तो उनके पास है ही। ठीक यही बात शोध-अनुसंधान में भी होती है। कुछ अनुसंधित्सु जैसे-जैसे पढ़ते जाते है, साथ ही साथ लिखते भी जाते है; कुछ ऐसे भी होते हैं जो पहले पढ़ते और नोट्स तैयार करते है फिर लेखन में जुड़ जाते हैं। और तब एक मुश्त में सारा काम हो जाता है। मैत्रेयीजी ने कम सालों में इतने विपुल साहित्य की रचना कैसे की। इसका प्रत्युत्तर भी यही है। प्रस्तुत अध्याय में हम इन्हीं सब मुददों और बिन्दुओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। तृतीय और चतुर्थ

अध्याय में हम क्रमशः "कस्तूरी कुण्डल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया" पर विस्तृत विवेचना कर चुके हैं, तथापि यहाँ बहुत संक्षेप में उनके विहंगावलोकन का उपक्रम है।

(अ) कस्तूरी कुण्डल बसै :

"कस्तूरी कुण्डल बसै" भारतीय नारी की दो पीढ़ियों की कारागार-मुक्ति की कारगर कथा है। भारतीय नारी पर कारागार की जो दीवारें हैं उनमें से कुछ दीवारों को कस्तूरी (मैत्रेयीजी की माताजी) तोड़ती है। स्त्री को शिक्षा का अधिकार, संपत्ति में हिस्से का अधिकार, पुरुष की भांति नौकरी या व्यवसाय करके आत्मनिर्भर होकर स्वाभिमान से जीने का अधिकार, अन्याय और अत्याचार के खिलाफ लड़ना जैसी दीवारों को कस्तूरी अपने लौह-निर्णय से तोड़ती हैं। यह पहली पीढ़ी की लड़ाई है। परंतु इन दीवारों को ढहाने में कुछ मनोवैज्ञानिक दीवारों को खड़ी करने का काम भी कस्तूरी करती हैं। माँ द्वारा रचित कारागार की दीवारों को ढहाने का काम मैत्रेयी करती हैं। अपने इस संघर्ष में कस्तूरी पुरुष और प्रणय विद्वेषिनी हो जाती है। कस्तूरी की इस मानसिकता की तुलना हम पश्चिम की नारी-मुक्ति आंदोलन से कर सकते हैं, जहाँ स्त्री पुरुष को अपना प्रतिपक्षी और विरोधी मानती है। परिणामस्वरुप मैत्रेयी के किशोर और युवावस्था में वह निषेधों की एक दीवार-सी खड़ी कर देती है। वस्तुतः मुक्ति पुरुष से नहीं पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था से होनी चाहिए, पुरुष की अनौचित्यपूर्ण सत्ता से होना चाहिए, उन परंपराओं और रुढियों से होना चाहिए जो स्त्री को उसके मानवीय अधिकारों से वंचित करती हैं और उसे दोयम दर्जा देती है, मुक्ति पुरुष की आत्मदया से होनी चाहिए, हीन-भावना से होनी चाहिए और इस कारा को तोड़ने का काम मैत्रेयी करती है। वह पुरुषों से विद्वेष नहीं रखती है। बल्कि स्त्री की जैविक आवश्यकताओं को समझते हुए पुरुष की आवश्यकता पर तवज्जो देती है। वह विवाह और प्रणय के विरोध में नही है। वह ऐसे पुरुष की कामना करती हैं जो स्त्री को बराबरी का दर्जा दे। स्त्री-पुरुष में बराबरी और दोस्ती की वह पैरोकार है और यह बात उनकी इस आत्मकथा और उपन्यासों में भी दिखती है।

डा. सरजूप्रसाद मिश्र ने "कस्तूरी कुण्डल बसै" की समीक्षा करते हुए निष्कर्ष रुप में कहा है - "कस्तूरी कुण्डल बसै" में मां - बेटी के व्यक्तित्वों के द्वन्द बखूबी चित्रित है। इस द्वन्द का मनोवैज्ञानिक आधार बहुत स्पष्ट है। अपने वैवाहिक जीवन में कस्तूरी ने नाममात्र को भी सुख नहीं पाया। विकट

संघर्षों से गुजरकर वह निष्कर्ष पर पहुंची कि पुरुष के कारण ही नारी की जिन्दगी नरक बनी हुई है। वैवाहिक जीवन से वह नफरत करती है। जबकि प्रेम और विवाह उसकी जवान बेटी की स्वाभाविक आवश्यकता है। वह स्वयं को अपनी बेटी समक्ष आदर्श के रुप में प्रस्तुत करना चाहती है। बेटी को गृहस्थ जीवन में आकर्षण है इसलिए वह विवाहेच्छुक है। नौकरी के कारण वह बेटी को दूसरों के यहाँ रखती है। वह भूल जाती हैं कि पुरुष की गिद्ध निगाहे हरदम उसकी बेटी की अस्मत पर रहती है। कस्तूरी अपनी बेटी की स्वाभाविक इच्छाओं को समझकर उसके साथ उचित न्याय नहीं कर पाती है। बेटी का मां के प्रति सम्बन्ध घृणा और प्रेम का है।"[6] इस प्रकार विवाह और नौकरी में मां कस्तूरी नौकरी को प्राथमिकता देती है। वह चाहती हैं कि बेटी मैत्रेयी खूब पढ़े और अफसर बने, लेकिन लाख प्रयत्न करने पर भी जब कस्तूरी अपनी बेटी को विवाह-विरुद्ध नहीं कर सकती तब वह उसके लिए वर की खोज शुरु करती है। पर उसमें भी उसका आग्रह हैं कि वह किसीको फूटी कौडी दहेज के रुप में नहीं देगी। लड़की की शैक्षिक योग्यता को देखकर कोई लड़का यदि उसका हाथ मांगता है तो उसे आपत्ति नहीं होगी। इस तरह अन्ततः अलीगढ़ के डाक्टर शर्मा से मैत्रेयीजी का विवाह संपन्न हो जाता है। अब आत्मकथा की कुछेक प्रमुख घटनाओं का उल्लेख करना चाहेंगे।

1. कस्तूरी के जन्म की कथा – यह सतमासी तब जन्मी थी, जब बड़ा बेटा मरा था। सत्यानाशिनी का जन्म ही एक जंजाल बन गया। पेट में मांने पसेरी मार ली थी, वह फिर भी नहीं मरी। पैदा होते ही भंगिन से फिकवाई जा रही थी कि अभागी रो पड़ी। मां को दया आ गयी। मां का मानना था कि संसार में औरत के मुकाबले सख्त-जान और कोई नहीं। कहावत भी है - गाय मरे अभागे की, बेटी मरे सुभागे की।[7]
2. लगान वसूली के लिए अंग्रेजी शासन में अधिकारियों तथा जमीनदार के कारिन्दों का अत्याचार पूर्ण रवैया। लगान न भरने पर कोड़ो की मार खानी पड़ती थी। कुर्की-निलामी से लगान की भरपाई न हो तो जमीनदार अफसर से मिलकर किसानों की बुरी तरह से पिटाई करवाते थे। और अपनों पर जुल्म को एवजी में अफसर तथा जमीनदार तरक्की और इनाम-खिताब पाते थे।[8]

3. कस्तूरी का ब्याह - कस्तूरी विवाह नहीं करना चाहती थी क्योंकि बचपन से ही उसके मन में सती होने का डर बैठ गया था। इस पर मां और भाभी के व्यंग्यबाण और गालियां झेलनी पड़ती है। मां और भाभी का मानना था कि बेटी धान का पौंधा होती है, जिसे समय रहते दूसरी जगह रोप देना ही अच्छा है। पर कस्तूरी का विवाह, विवाह नहीं सौदा था। भाभी के गहनों और लगान-वसूली के लिए उसे आठ सौ रुपये कलदार में बेचा गया था।[9]

4. राधा भाभी का किस्सा – भूख के मारे रोटी खा लेने पर मारे डर के लोटा लेकर खेतों की ओर निकल गई थी क्योंकि सास ने उसे खाते देख लिया था। सवेरे दूसरे गांव का धोबी उसे अपने संग लेकर आया और उसने कसम खाकर कहा कि राधा भाभी उसके लिए बहन के समान है, पर सास ने हरजाई कहते हुए जीभ पर गर्म चिमटा दगवाया। जबान बन्द हो गयी। महीनों तड़पती रही और अन्ततः मर गई।[10]

5. मैत्रेयी का जन्म-मैत्रेयी का जन्म 30 नवम्बर 1944 को, अलीगढ जिले के सिकुर्रा गांव में हुआ था। नाम तो पुष्पा रखा गया पर पिता हीरालाल ने उसका नाम रखा मैत्रेयी। जब बच्ची का जन्म हुआ तब हीरालाल बीमार थे। कहने लगे कि ग्रह-नक्षत्रों ने रास्ता दिया। ऋद्धि-सिद्धि साथ हो लिये। पंडितजी ने यही कहा था न ? और यही हमने देखा, हमारे घर में अन्न और दूध कि सारे गांव में अमन चैन ! मैत्रेयी आयी है हमारे घर। बीमार आदमी से क्या कहती कस्तूरी नहीं कह पाई कि अमन-चैन क्यों है ? फसलें क्यों अच्छी हुई ? जानवर क्यों दूध देने लगे ? इसलिए कि अब कहीं आजादी की आहट सुनाई पड़ रही है। गोरों का कोड़ा ढीला हो गया है। गांधीजी का आंदोलन रंग ला रहा है। मैत्रेयी के जन्म के बाद हीरालाल मोतीझला की बीमारी में तड़प-तड़प कर, बाय में अनाप-शनाप बकते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है।[11]

6. कस्तूरी का पढ़ने जाना – आज़ादी के बाद देश के नेताओं का सूत्र-वाक्य-स्त्री-शिक्षा और विधवा कस्तूरी के जीवन ने भी करवट ली। ढाई कोस चलकर इगलास किताब-कापी भरा बस्ता लिए-लिए कस्तूरी जाने लगी। उसके इस दुस्साहस में साथ दिया ससुर मेंवाराम ने।[12]

7. चन्दना का गीत – मैत्रेयी पढ़ने जाती है, पर ध्यान उसका पढ़ने में कम और दूसरी बातों में ज्यादा रहता है। उन्हीं दिनों मैत्रेयी का संग गांव की बूढ़ी पुरोहितानी खेरापतिन से होता है। खेरापतिन दादी उसे चंदना का गीत सुनाती है। ब्याही चंदना सुनार के लड़के से प्रेम करने लगती है और उसीके कारण कुंवरजी द्वारा मार दी जाती है। कस्तूरी चाहती है कि पुष्पा खेरापतिन से दूर रहे, पर उतना ही ज्यादा वह उनसे और उनके गीतों से जुडती जाती है।[13]

8. चमार के लडके एदल्ला से मैत्रेयी की दोस्ती – जाटों और ठाकुरों के बच्चे एदल्ला से बोझा उठवाते, अपना बस्ता उठवाते यह मैत्रेयी को अच्छा नहीं लगता था, अतः एदल्ला से उसकी घनिष्टता बढ़ती गई।[14]

9. कस्तूरी का सरकारी नौकरी में लगना-रामावातार चाचा जो पास के गांव के अध्यापक थे, उनके प्रयत्नों से कस्तूरी को सरकारी नौकरी मिलती है। इस प्रकार वह गांव की स्त्रियों के लिए एक नजीर (उदाहरण) बन जाती है। रामावतार चाचा के कारण ही मैत्रेयी का परिचय "नवभारत टाइम्स" से होता है।[15]

10. कस्तूरी के ससुर और मैत्रेयी के बाबा (दादा) मेवाराम की मृत्यु – रुढ़ि-परंपरा का विचार न करते हुए बाबा ने कहा था कि उनका क्रिया-कर्म और श्राद्ध उनकी पोती करेगी और वही उनकी जायदाद की वारिस भी होगी।[16]

11. ग्राम-सेविका के रुप में कस्तूरी की पहली पोस्टिंग जिला झांसी में होती है। अतः मैत्रेयी को अलीगढ़ में पढ़ाई के लिए रखा जाता है। पहले संयोजिका के घर उसके ठहरने का प्रबंध किया जाता है, लेकिन वहाँ एक जवान लड़के का त्रास था। दूसरे घर पर रखा तो एक बूढ़ा परेशान करने लगा।[17]

12. अन्य घटनाएं : कस्तूरी और मैत्रेयी के कुरीतियों के प्रति आक्रोश के भाव, मैत्रेयी को लेकर कस्तूरी की निराशा, उसे भी महिला-विकास की नौकरी में लगवा देना, कस्तूरी और गौरा के बीच के सजातीय सम्बन्धों के संकेतात्मक चित्र, कस्तूरी और मैत्रेयी के विवाह के सम्बन्ध में परस्पर विपरीत विचार, आजादी के बाद में कुछ परिवर्तन ;[18] मैत्रेयी के

वर की खोज को लेकर कस्तूरी की परेशानियां कथासरित्सागर की शेर पर विराजमान लड़के की कहानी से प्रेरित होना, अढ़ू के नगलावाले अयोध्याप्रसाद का अपने एंजीनियर बेटे के लिए राजी होना पर दहेज की बात के कारण बात का न बनना, अंततः कस्तूरी की ननद विधा के प्रयत्नों से अलीगढ़ के डाक्टर का रिश्ता मिलना जो कस्तूरी की ही तरह कुण्डली नहीं उपाधि-पत्रों में मानता था ;[19] डाक्टर की मैत्रेयी से सगाई, अलीगढ़ से मैत्रेयी पर डाक्टर का तार, तार की बात से ही आतंक का फैलना, मैत्रेयी की उलझन- डाक्टर के आने का आनंद भी और अपनी पिंजड़ेनुमा कोठरी में ठहराने की चिन्ता भी, नन्ही की कहानी, रघुवीर काछी उर्फ पोलेबाबा की कहानी, नंदकिशोर से मुलाकात की कहानी, कालेज की लड़कियों का मैत्रेयी से दुर्व्यवहार, छात्र-नेता मदन मानव से दोस्ती और उसके चुनाव-प्रचार में मैत्रेयी का सहयोग, अंग्रेजी भाषा का डर, जादूनाथ के बाड़े की औरतों पर मैत्रेयी की व्यंग्य कविता जिसके कारण ही उसे बाड़ा छोड़ना पड़ा था और उपर्युक्त पिंजड़ेनुमा कोठरी में आना पड़ा था, राज-कुमारी का अपने हक के लिए लड़ना, बिछड़े हुए साथी के लिए कविता लिखना, कालेज में आकर पढ़ाई का असली अर्थ समझना, आलमआरा के बुर्का छोड़ने पर उसे बेइज्जत करना, आज की तथाकथित सुशिक्षित स्त्रियों पर मैत्रेयी का कटाक्ष, निशि की आत्महत्या (विधुर से विवाह करवाने की विवशता से प्रेरित) मैत्रेयी की महिला-मंगल की सेवादारिनियों से चिढ़, मैत्रेयी का संस्कृत एसोशिएशन की सेक्रेटरी होना, मैत्रेयी का मानना कि लड़कियों को भी राजनीति से सरोकार रखना चाहिए, चीमनसिंह यादव के बेटे युवराज और रतनसिंह मैत्रेयी के मुंहबोले भाई, रतनसिंह के संदर्भ में यादवों में बालविवाह की चर्चा, मैत्रेयी के विवाह को लेकर उपाध्यायजी का चिढ़ना, इस संदर्भ में उपाध्यायजी के विचार, खाप-पंचायतों की अमानवीय हरकतें, सल्लो की कहानी, शकुन की त्रासदी कि स्वंय पति द्वारा उससे धंप करवाना, शकुन के आदमी प्रभुदयाल की कहानी, युवराज की सहायता से प्रभुदयाल की मदद करने का मैत्रेयी का प्रयास, अलीगढ़ डाक्टर को तार भेजना कि "मेरा पत्र मिलने के बाद ही आना";[20] कस्तूरी का विचार कि मैत्रेयी की शादी सिकुर्रा से ही की जाए जबकि गांव के बनिये भगवान-दास का परामर्श कि शादी शहर से

हो जिससे कस्तूरी को कर्ज लेना पड़े और उसका फायदा हो, सिकुर्रा के नम्बरदार का उदार चरित्र शादी में बारिश के कारण विघ्न, विधाबुआ और मैत्रेयी की भाभी के बीच वाक्‌युद्ध, कलावती चाची और लौंगसिरी बीबी के गाली गीत, हबीबन को लेकर कस्तूरी का जातिवादी कट्‌टरता पर झगड़ पड़ना, कस्तूरी के विद्रोह को लेकर औरतो में झगड़ा, कस्तूरी द्वारा माफी मांगना, मैत्रेयी के आगे अपनी भड़ास निकालना, कलावती चाची और मामी के बीच झड़प, बारात का आगमन, किसी शरारती लडके द्वारा घोड़ी की पूंछ को मरोड देना, अनिष्ट का होते-होते बचना, परंपरगत रुढ़ियों को लेकर कस्तूरी का अड़जाना, मैत्रेयी का विवाह सिकुर्रा में परंपरा-तोड़ विवाह, बिना दहेज-मिलने की शादी का राम-राम करके संपन्न होना ।[21]

13. दुनियां की माओं से उल्टी कस्तूरी की हिदायतें, डाक्टर और मैत्रेयी के प्रथम मिलन का सांकेतिक वर्णन, संभोग-क्रिया में मैत्रेयी की ही पहल, विपरीत रति द्वारा संपन्न, डाक्टर का पहले खुश होना पर फिर मर्दवादी सोच के कारण मैत्रेयी को लेकर संशय के चक्रव्यूह में फंसना, डाक्टर का बीमार हो जाना, माताजी द्वारा लिबउआ भेजना, मैत्रेयी का पगफेरे के लिए कस्तूरी के पास आना, जेवर-गहनों को लेकर चलने की मैत्रेयी की जिद जबकि दूसरी ओर माताजी का पत्र कि वह गेहने-जेवर न लावें, बहू की उल्टी रीत से ससुरालवाले चकित कि मां से बिदाई के वक्त मैत्रेयी रोई नहीं थी और अब ससुराल से पीहर जाते हुए रो रही है ।[22]

14. छः महीने तक जब कोई लेने नहीं आया तब मैत्रेयी का चिंतित होना, डाक्टर का अजीब व्यवहार कभी लाड़ बरसाना तो कभी गुस्से में बरस पड़ना, डाक्टर के विचार की मैत्रेयी स्त्री की तरह रहे और उसमें लज्जा, सहनशीलता और त्याग जैसे भावों की प्रधानता रहे, मदन मानव द्वारा मैत्रेयी को पत्र लिखने के लिए प्रेरित करना, डाक्टर का आना, कस्तूरी का प्रसन्न होना, कस्तूरी का अपने दामाद के प्रति लगाव, दामाद द्वारा माताजी को प्रसन्न करने के प्रयत्न, कस्तूरी के लाख प्रयत्नों के बावजूद बेशरम होकर डाक्टर- मैत्रेयी का मिलन संपन्न होकर रहता है, मैत्रेयी द्वारा मां को कोसना, डाक्टर द्वारा माताजी को समझने का प्रयास और उनमें अपनी मां की छवि को देखना, कस्तूरी

डाक्टर के साथ मैत्रेयी को नहीं भेजती, डाक्टर का लौट जाना, मैत्रेयी का गर्भवती होना, कस्तूरी को यह पसंद न आना, कस्तूरी द्वारा परिवार-नियोजन के साधनो की प्रशंसा, मैत्रेयी द्वारा पत्र लिखकर डाक्टर को सूचित करना।[23]

15. संयोजिका और सुबोध बाबू का प्रेमिका और प्रेमी का रिश्ता, सुबोध बाबू की औरत द्वारा माताजी की चोटी पकड़ना, कस्तूरी के सूई के दर्द का पांव तक आ जाना। पति के लिए मैत्रेयी का ऊहापोह, गर्भवती होते हुए भी मैत्रेयी का मां कस्तूरी को देखने जाना, मुख्यमंत्री द्वारा कस्तूरी के विभाग को बन्द करवाना, मुख्यमंत्री की उल्टी अप्रगतिवादी सोच, कस्तूरी की नारीवादी सोच, नेताओ की मर्दवादी सोच पर कस्तूरी के व्यंग्य, आजादी के बाद मोहभंग, प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी को कस्तूरी द्वारा मेंमो भेजना, महिला-प्रधानमंत्री से भी कस्तूरी का मोहभंग, कस्तूरी का महिला-मंगल को लेकर आक्रोश, अहिंसा-विषयक गांधीजी के विचार मैत्रेयी का पुत्री-प्रसव, औरतों की जली-कटी बातें, मैत्रेयी की लड़की भी सतमासी, कस्तूरी द्वारा मैत्रेयी को कहना कि व्रत मत रखना वह सबसे बड़ा पाखंड है, बीमारी के बाबजूद कस्तूरी का महिला-मंगल आंदोलन में कूद पड़ना और जेल जाना, कस्तूरी की थैली में हथगोले रखकर उसे फंसाने का षडयंत्र, मैत्रेयी का मां के लिए दु:खी होना, कस्तूरी को छुड़ाने के लिए डाक्टर के प्रयास, नम्बर-दार, रामावतार, चरनसिंह आदि का भी लखनऊ आना, मैत्रेयी को यह अहसास होना कि मानो कस्तूरी पलंग के पास आकर बैठ गई हो और उसे एक से दो और अब दो से तीन होने की संतुष्टि हो रही है मानो उसके घर का कारागार टूट रहा है।[24]

इस तरह कस्तूरी के विवाह से शुरु होकर मैत्रेयी के पुत्री-प्रसव तक की घटनाओं को प्रस्तुत आत्मकथा में संजोया गया है।

"कस्तूरी कुण्डल बसै" में अभिव्यक्त कुछ विचार-सूत्र :

1. "पहलेपहल मैत्रेयी को आश्चर्य हुआ था कि सभ्य-शिक्षित दिखनेवाली इन महिलाओं को न अखबार में दिलचस्पी, न किताबों से कोई मतलब... मगर ये पढ़ी-लिखी हैं। अब समझ में आया उनका तो आनंदलोक अलग है - कपड़े, गहनें, उम्दा खानें, अच्छे घर के साथ

नौकर-बान्दी । पढ़ाई की सनदों का हासिल, यह सब, कम तो नहीं ? साथ ही तो जान छिड़कनेवाला पति और वात्सल्य के आधार बच्चे । इस खजाने के आगे अपनी जिन्दगी का क्या मोल ? कितना सुन्दर संसार है । न सवाल, न जवाब, कैसी शान्त दुनिया है ।"[25] (जदूनाथ के बाड़े की औरतों को लेकर व्यग्य)

2. "बच्चे देने की मशीन में तब्दील हो जाना है तुम्हें ? जिन्दगीभर सिर नहीं उठा पाओगी । बच्चों का पालन और पति की खिदमत, यही तो स्त्री-धर्म माना गया है । तुम्हारी शिक्षा का यही मतलब निकलता है तो फिर इस मुहल्ले की अनपढ़ औरतें क्या बुरी हैं ? उम्मीद थी कि तुम यहाँ की अनपढ़ स्त्रियों को उनकी दशा के प्रति सचेत करोगी । औरत की बात औरत जल्दी समझ सकती है न ?"[26] (उपाध्यायजी की सीख और लगभग इसी प्रकार विचार रखती है कस्तूरी भी)

3. "लाली, चल तेरी खातिर कुछ न किया, पर यह तो किया । नहीं तो गंगाजल की बूंदों से क्या हर आदमी पवित्र हो जाता है ? मुसलमान से हिन्दू हो जाता है ? हिन्दू से ब्राह्मण जैसा पूजनीय ।"[27] (मैत्रेयी की शादी में कस्तूरी का झुकना । जातिवादी के खिलाफ कस्तूरी के विचार ।)

4. "लाली, ब्याह तो हो गया, पर तू नासमझ औरतों की तरह व्यवहार मत करना । पांव-फांव मत पूजना किसीके भी । सुन ले कि रोटी छुआई की रस्म नहीं तुझे चूल्हे चौके से बांधने का महूरत निकलेगा । साफ मना कर देना । तेरी कुछ किताबें मैंने अटैची में रखी थीं, अटैची टूट गयी । रेशमी साडियों का वजन साधने वाली नाजूक अटैची भला किताबों का बोझ सह सकती थीं ? मेरी भी मत मारी गई । ले चाबी, लोहे के बक्से में तेरी किताबे हैं । बस मेरी तो मां के नाते इतनी ही कहावत है कि सिंगार-पटार में मत लगी रहना । तुझे बड़ा शौक है बिन्दी-महावर का । अलीगढ़ यूनिवर्सिटी जाना । देखना कि पी.एच.डी. बात बनेगी या नहीं ?"[28] (कस्तूरी की बातें मैत्रेयी को बिदाई के समय । कहना न होगा कि ऐसे अवसरों पर मांए इससे विपरीत प्रकार की सीख ही देती है । इससे कस्तूरी की मानसिक ऊंचाइयों का पता चलता है ।)

5. "मैत्रेयी को ऐसे कई दृश्य याद आये, जो उसकी स्मृतियों में घटित हो चुके थे और गांव में लोकप्रिय कामकला के उदाहरण थे। कुछ न सोचा फिर पिया को आनंदलोक में खींच लिया। वे खिंच भी आए, क्योंकि सचमुच आनंद पा रहे थे। सारी पर्देदारियों से मुक्त होकर जो आदिम दृश्य बना, उसमें थल नहीं जल-ही जल था। जल की तरंगें उल्टी थीं। उलटी लहरों की बात ने बिसात पलट दी। श्रृंखला की कड़ियां टूटीं। प्रियतम चकराए, मगर लड़की चकराने का मौका दे तब न ? लहरों पर लहरें चली आईं। सिलसिला बीच में टूटे तो भंवर पड़ जाएगा, यह बात डाक्टर ने भी समझ ली।"[29] (प्रथम मिलन का सांकेतिक वर्णन। हमारे यहाँ प्रायः शुरुआत पुरुष से होती है, परंतु यहाँ उलटी धारा बहती है। श्रृंखला की कड़ियों के टूट ने की जो बात कही है वह इसी संदर्भ में है। ऐसे में प्रायः पुरुष स्त्री को चरित्रहीन मान बैठता है।)

6. "कैसा अच्छा जमाना है, कैसी सहूलियतें हैं कि औरत के सारे बन्धन कट गए। बेचारी कभी पेट में बच्चे पालती, कभी गोद में गोद का बड़ा न होता, तब तक फिर पेट में आ जाता। चालीस की होते-होते देह झोला हो जाती और बच्चा जनने में एक दिन ख़त्म हो जाती। यही थी औरत की कहानी। मैं तो कहती हूं कि इस जमाने ने स्त्री की आज़ादी की शुरुआत कर दी, अब बच्चे-कुच्चे क्या महत्व रखते हैं, उसकी इच्छा पर निर्भर रहेगा। जनने-पालने के चक्कर से छूटेगी, अपने लिए कुछ सोचेगी। लाचारी से मुक्त होना ही तो ताकतवर बनना है।"[30] नये जमाने के बारे में कस्तूरी के विचार। प्रायः स्त्रियां और पोंगा-पंडित जब इस जमाने को कलियुग कहकर कोसते हैं, वहाँ कस्तूरी इस नये युग का स्वागत करती है और उसे स्त्री-मुक्ति की मुहिम से जोड़ती है।

7. "लाली, तू तो यह बता कि देश आजाद किसने मान लिया ? औरतों की आजादी तो गुलाम पड़ी है। बस मर्दो का आजाद होना देश का आजाद होना है ? स्वतंत्रता संग्राम में औरतों ने लाठियाँ खायी, अस्मत लुटाई, उनकी स्वतंत्रता कब आएगी ? वे तो तुमने भी गायों की तरह लाठियों से हांक दीं और खूटों से बांध दीं। अब उनका रस्सा कौन खोले ?"[31] (कस्तूरी के विचार, दूसरी ओर प्रदेश का मुख्यमंत्री स्त्रियों के बदले पुरुषों को नौकरी देने के पक्ष में था।)

8. "लाली, हम औरतों ने अपने हाथों अपने पांव कुल्हाड़ी मारी है। सजने-संवरने का शौक औरतों से ज्यादा किसीको नहीं, यह बात आदमी तो क्या चिड़िया-कौआ भी जानते हैं। चूड़ी, बिछिया, मेहंदी, महावर पा गई तो समझ लो जहान का राजपाट मिल गया। हमने तो साथियों से कहा, जाओ खूब सिंगार करो। सिंगार से तुम्हारा पेट नहीं भरता। दफ्तर में भी रंगी पुती, चमकती-दमकती आती हो, जैसे काम नहीं करना, नाचना है।"[31] (कस्तूरी के नारीवादी विचार)

9. "भई, बड़े चालबाज निकले ये तो। देश आजाद होते ही आंखे बदल दीं। गद्दियां, कुर्सियाँ संभालते ही राजा हो गए। तमाम राजा-महाराजा अपना-अपना फरमान लिए चले आ रहे हैं। रिआया औरत जात, थोड़ा-बहुत देकर बहला दो। दूसरा कहता है, दिए हुए को छीनकर औकात दिखा दो। औरत घर में रहे, आज्ञा ढोए, सेवा करे, बेटे पैदा करती जाए। तब ये हमारे ऊपर अहसान करेंगे। औरतों के बेटों को रोजगार देंगे। बस, मर्द होना ही योग्यता है, उसके आगे औरत की तमाम जरुरतें कहां ठहरती है ?"[32] (आजादी के बाद की स्थितियों पर कस्तूरी का आक्रोश)

10. मनुष्य के रुप में अगर सबसे कठिन, चुनौती भरी जिन्दगी को पाया है तो स्त्री ने या कुदरत को ही उससे बैर था ? या कि सृष्टि के कर्ता-धर्ता की ही कोई साजिश..... मादा बनाने के बाद मादा होने की सजा का नाम औरत धर दिया। क्योंकि साथ में दिमाग-दिल और विवेक भी दे दिया।"[33] (तुलनीय-औरत होने की सजा अरविन्द जैन या "औरत के हक में – तस्लीमा नसरीन। मैत्रेयी के पुत्री-प्रसव पर औरतों की जली-कटी बातो को लेकर।)

11. "लाली, सबसे बड़ी बात तो यह है कि अपने हिसाब से आदमी रिवाजों को मानता है, उससे बात नहीं बनती तो धर्म-शास्त्रों का सहारा लेता है, वहाँ भी विश्वास नहीं जमता तो गुरु-पैगम्बर खोजता है और जब कहीं पेश नहीं जाती तो अपनी अन्तरात्मा ही खंगालता है, जो उसका आखिरी आसरा है।"[34] (कस्तूरी के विचार धर्म और शास्त्रों के बारे में)

(आ) गुड़िया भीतर गुड़िया :

"कस्तूरी कुण्डल बसै" के प्रकाशन के समय मैत्रेयी शायद पेशोपेश में थी कि उसे उपन्यास कहें या आपबीती ? इसका उल्लेख पुस्तक के प्रांरभ में

संक्षिप्त भूमिका के रुप में उन्होंने किया भी है ।[35] परंतु "गुड़िया भीतर गुड़िया" के संदर्भ में तो उन्होंने शीर्षक देकर कोष्ठक में स्पष्ट लिखा है कि यह आत्मकथा ही है । प्रथम में कस्तूरी के साथ-साथ और उसके समानान्तर मैत्रेयी की कथा है परंतु प्रस्तुत आत्मकथा में मैत्रेयी की अपनी बात केन्द्र में आ गयी है । पर शायद अब कस्तूरी मैत्रेयी के भीतर आ गयी है । तभी तो उसका शीर्षक है - गुड़िया भीतर गुड़िया । प्रारंभिक निवेदन में मैत्रेयीजी लिखती हैं – "मैं तो पहले ही मां के सपनों को रौंदती हुई वैवाहिक जीवन चुनकर खुद उनसे अलग हुई थी । मक़सद भी साफ था एक पुरुष साथी मिलने से मेरे रात दिन सुरक्षित हो जाएंगे । मैं अपने आचरण से पत्नि लेकिन मानसिक स्तर पर जो दखल देने लगती, वह कौन थी ? कौन थी वह जो धीरे-धीरे मुझे विवाह-संस्था से विरकत करती हुई..... मैं आसपास देखती किस-किस ने तो मेरी दृष्टि बदली और दृष्टिकोण पलटकर रख दिया ? शायद वह मां थी जो परोक्ष रूप से मेरा रास्ता परिवर्तनकामी लोगों की ओर ले गई ।[36] "मुझे किसने बिगाडा ?" शीर्षक लेख पहले "हंस" में आता था । यदि मैत्रेयीजी ऐसा लेख लिखे तो उनको बिगाड़ने वालों की सूची में "माताजी" (कस्तूरी) का नाम शायद सबसे ऊपर रहे ।

मैत्रेयीजी में अन्याय और अत्याचार के खिलाफ जो आक्रोश है, रीति-रिवाजों को लेकर जो ऊहापोह है, स्त्री-पुरुष गैर-बराबरी के प्रति आक्रमक रवैया है, ये सब शायद उनको माताजी से मिला है । स्वाधीनता के बाद "महिला-मंगल" का आंदोलन विफल । कर दिया है । राजनीतिक और प्रशासनिक कार्यालयों से "ग्राम-सेविका" और "सहायक विकास अधिकारी" (महिला) जैसे पद खारिज कर दिए जाते हैं । "महिला-मंगल" की महिला कर्मचारियों को प्रशिक्षित करके स्वास्थ्य-विभाग में नियुक्त किया जाता है । मैत्रेयीजी ने निवेदन में लिखा है कि - "ट्रेनिंग पाकर माताजी जिस-जिस पी.एच.सी. केन्द्र पर रहीं, वहाँ के डोक्टरों और कम्पाउंडरों के लिए आंख के कांटे के रुप में रहीं, क्योंकि सरकारी दवाएं इंजेक्शन और परिवार-नियोजन के उपकरण तथा केसों के मामले में गड़बड़ी माताजी को चैन नहीं लगने देती थी ।"[३७] और ये ही सब काम मैत्रेयीजी अब अपने लेखन के द्वारा कर रही हैं । माताजी उनको बड़ा अफसर बनाना चाहती थीं, पर मैत्रेयीजी अब जो बन गई हैं उन पर माताजी जरुर गर्व करतीं । प्रस्तुत आत्मकथा "गुड़िया भीतर गुड़िया" में इस दूसरी मैत्रेयी के बनने की कहानी मुख्य है ।

डा.सरजूप्रसाद मिश्र ने प्रस्तुत आत्मकथा की समालोचना करते हुए लिखा है - "गुड़िया भीतर गुड़िया" का रहस्य अब खुलता है । घर-गृहस्थी के बंधे दायरे को तोड़कर अपनी रचनात्मकता (साहित्य लेखन) को विकसित करती नारी । मैत्रेयीने साहसपूर्वक लक्ष्मण-रेखा का उल्लंघन किया तभी वह अपने समय पर अपनी छाप छोड़ पाई – "यदि मैंने अपने भीतर सुकुमारता को तोड़ न दिया होता तो सचमुच में मैं आज मनमोहिनी गुड़िया का अनुपम रुप होती । लेकिन मैं सोचकर आश्वस्त होती हूं कि गुड़िया की छवि तोड़ डालने से ज्यादा मुझे कहीं मुक्ति नहीं । हां, इस टूटने का रुप अगनपांखी के राख हो जाने जैसा है ।"(पृ.246) नारी-विमर्श के प्रवक्ता कुछ भी कहें मैत्रेयी ने भारतीय नारी के जीवन-यथार्थ को थोड़े-से शब्दों में बांध दिया है - "भारतीय स्त्री को न आर्थिक आत्मनिर्भरता सुखी कर सकती है न चेतना-संपन्नता उसकी सहायक हो सकती है । बस उसे पारंपरिक कर्मकाण्ड सुखी और सुरक्षित रखने की गारंटी देते हैं । (पृ.247)[38]

प्रस्तुत आत्मकथा से ज्ञात होता है कि मैत्रेयीजी का साहित्य-लेखन ४५ वर्ष की आयु के बाद शुरु होता है । आज लेखन के क्षेत्र में उनकी उपलब्धि है उसका श्रेय उनकी बेटीयों को जाता है । पहले वह अपनी बेटियों के स्कूल मैगेजिन के लिए कविता लेख इत्यादि लिख दिया करती थीं । अब वे ही बेटियां मां से आग्रह कर रही थी कि वह अपने नाम से अपने लिए लिखें । बेटी नम्रता "आखिर क्यों" फिल्म का कैसेट ले आइ जिसमें स्मिता पाटील ने एक संघर्षशील लेखिका का किरदार निभाया है । उन दिनो में साप्ताहिक हिन्दुस्तान में कहानी-प्रतियोगिता का एक विज्ञापन छपा था । उस "प्रेमकहानी-प्रतियोगिता" के लिए मैत्रेयी कहानी लिखती है । नम्रता अपनी डायरी में लिखती है हमारा एफर्ट सक्सेसफुल रहा । (पृ.162) लेकिन वह कहानी स्वीकृत नहीं हुई । "सारिका" से भी कहानी वापस आयी । इस प्रयत्न के उपक्रम में साप्ताहिक के सह-सम्पादक से कुछ सम्बन्ध बनता है जिसके फल-स्वरुप 8-अप्रैल-1990 का मैत्रेयी की पहली कहानी "आक्षेप" साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित होती है । उन्ही दिनों में लेखिका का सम्पर्क मन्नू भंडारी से होता है जो उन्हे राजेन्द्र यादव तक पहुंचाती है । हंस के लिए मैत्रेयी कहानियाँ लिखती हैं । लगातार पांच कहानियों के अस्वीकृत होने पर चकबन्दी के अनुभवों पर आधृत "सेंध" कहानी "हंस" में "जमीन अपनी अपनी" शीर्षक से प्रकाशित होती है । स्वयं राजेन्द्र यादव मन्नू भंडारी के साथ हंस के उस अंक को लेकर मैत्रेयी के यहाँ

आते हैं । मानों साहित्य की दुनिया में मैत्रेयी इस कहानी से "सेंध" लगा ही देती है ।

फिर तो लेखिका एक के बाद एक शिखर सर करती जाती है और जितनी मजबूत, पक्की, मुकम्मल निर्मम और कठोर वह स्वयं होती हैं उनके उपन्यासों की नायिकाएं भी उतनी ही सशक्त और जोरदार होती जाती हैं । "बेतवा बहती रही" की उर्वशी में भावुकता का छेद लेखिका नहीं उड़ा पायी है, क्योंकि स्वयं भी उसी प्रकार की स्थितियों से गुजर रही थीं । सन 1994 के "पुस्तक मेले" के अवसर पर "इदन्नमम" प्रकाशित होती है । लेखिका का दावा है कि उसके सात ड्राफ्ट बनाए थे । डा. निर्मला जैन ने इस उपन्यास को मैत्रेयी की लम्बी छलांग कहा है, तो सुधीश पचौरी उसे "अधूरी अहीर कथा" के रुप में देखते हैं ।[40] राजेन्द्र यादव, सदी के शिखर समीक्षक डा. नामवरसिंह, धर्मवीर भारती, विष्णु प्रभाकर, मन्नू भण्डारी, उषा पियंवदा, गिरिराज किशोर, डा. परमांनद श्रीवास्तव आदि विद्वान और समीक्षक उपन्यास की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हैं । उपन्यास को दक्षिण का नंजनागुडू तिरूमा-लम्बा पुरस्कार, फैसला कहानी को कथा-पुरस्कार चिन्हार कहानी-संग्रह को हिन्दी अकादमी द्वारा कृति-सम्मान प्राप्त होता है ।[41] परंतु इन उपलब्धियों के बाद "गोडमधर" से मैत्रेयी के सम्बन्ध बिगड़ जाते है । गुड़िया भीतर गुड़िया में कहीं भी यह "गोडमधर" कौन है उसका स्पष्टीकरण नहीं मिलता है, परंतु अभी पिछले साल (सन् 2011) श्री एस.डी.पटेल आर्ट्स-कोमर्स कोलेज, आंकलाव में हुई एक संगोष्ठी में मेरे एक प्रश्न के उत्तर में उन्होने यह स्पष्ट किया कि वह गोडमधर चित्रा मुद्गल है ।

गुड़िया भीतर गुड़िया का प्रकाशन सन् 2008 में हुआ है और उसमें "अल्मा कबूतरी "कही ईसुरी फाग" तथा "खुली खिड़कियाँ" (स्त्री-विमर्श की पुस्तक) तक की रचनाओं का उल्लेख है ।[42] कम समय में विपुल साहित्य की रचना और कई सारे साहित्यिक पुरस्कारों और सम्मानों के कारण लेखिकाओं का ही एक ग्रुप मैत्रेयी की न केवल कटु आलोचना करता है बल्कि कई अनर्गल और अश्लील प्रकार की टीका-टिप्पणी भी करने से बाज नहीं आता है । इनमें डा.निर्मला जैन, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, चंन्द्रकान्ता, कमलकुमार, नासिरा शर्मा आदि का उल्लेख कर सकते हैं । ये लेखिकाएं मैत्रेयी को दोयम या तृतियम् दरजे की लेखिका मानती हैं, तो दूसरी तरफ राजेन्द्र यादव,

कमलेश्वर, परमांनद श्रीवास्तव, डा.मैनेजर पाण्डेय, डा.विजयबहादुर सिंह, डा.वीरेन्द्र यादव, मधुरेश, डा.रोहिणी अग्रवाल जैसे कई विद्वान और समीक्षक मैत्रेयी के साहित्य की भूरी-भूरी प्रंशसा करते हैं ।[43] एक प्रश्न यह भी होता है कि यदि मैत्रेयी बड़ी लेखिका नहीं है तो उन्हें इतने सारे पुरस्कार और सम्मान कैसे मिल गये ?

डा.सरजूप्रसाद मिश्र ने प्रस्तुत आत्मकथा के संदर्भ में कहा है । "गुड़िया भीतर गुड़िया" की लेखिका पर कबीर और निर्गुण काव्य-धारा का बहुत प्रभाव परिलक्षित होता है । अध्यायों के शीर्षक कबीर काव्य की पंक्तियो पर आधारित हैं । मां एवं पति के प्रति विरोध एवं आक्रोश की अभिव्यक्ति द्वारा वे अपने पाठकों तक यह संदेश पहुंचाना चाहती हैं कि वे अपनी नायिकाओं की तरह ही पुरुष-सत्ता के प्रति विद्रोहिणी हैं । डा.शर्मा को सारंग (चाक की नायिका) और मैत्रेयी में साम्य दिखाई देता है - "बात यह है मेरी जान किताब की सारंग, सारंग नहीं लगती, मुझे वह तुम लगती हो, एकदम तुम" (पृ.251) दाम्पत्य-जीवन में जो समझबूझ और समायोजन जरुरी है, वह लेखिका और डा.शर्मा के पास है । तभी सम्बन्ध विच्छेद की नौबत नहीं आती है - "मेरे और डाक्टर साहब के बीच सम्बन्धों में जितनी कडुआहट आती है, हम उतनी ही शिद्दत से एक-दूसरे को क्षमा करते चले जाते हैं । (पृ.300) मैत्रेयी की रचनात्मक्ता लेखन ही नहीं गृहस्थ-जीवन के संतुलन में भी सक्रिय दिखाई देती है ।"[44]

"गुड़िया भीतर गुड़िया" की प्रमुख घटनाओं में हम निम्नलिखित का शुमार कर सकते हैं - डा.शर्मा की दिल्ली की एम्स में नियुक्ति होना, डा.शर्मा द्वारा मैत्रेयी को आधुनिक बनाने का प्रयत्न, मैत्रेयी का डा. सिध्धार्थ के प्रति लगाव, डा.शर्मा के अन्तर्द्वन्द और अन्तर्विरोध, डा.रेखा अग्रवाल से पी-एच.डी. गाईड के संदर्भ में मिलना डा.अग्रवाल की सलाह कि मैत्रेयी लिंग्विस्टिक का कोई कोर्स करे, पति द्वारा इण्टरव्यूकाल के लेटर को छिपा देना, इल्माना नामक मुस्लिम महिला के परिचय में आना, मैत्रेयी का एम्स के डाक्टरों की पत्नियों से मेलजोल, उनकी तरह-तरह की गोशिप, इल्माना के जरिये मुस्लिम औरतों की स्थिति को जानना, इल्माना से सम्बन्ध तोड़ने के लिए पति द्वारा बढ़ता दबाव, नम्रता और माहिता की पढ़ाई की और ध्यान देने की सलाह, १९७१ का बांग्लादेश का युद्ध, डा.अहमद और डा.रिजवी के प्रति एम्स के डाक्टरों का भेदभावपूर्ण व्यवहार, युद्ध के कारण एम्स के परिसर में साम्प्रदायिक विचारों का भड़कना, अविश्वसनीयता का वातावरण युद्ध के कारण दिलों में

दरार का आना, मैत्रेयी और इल्माना के सम्बन्धों पर भी असर, इन्दिरा गांधी द्वारा इमरजन्सी की घोषणा, राजनीतिक मोहभंग "मीसा का कानून, जबरदस्ती नसबंदी का प्रोग्राम रेणु द्वारा पद्मश्री का खिताब लौटा देना, रेणु की जेल यात्रा, सन् 1977 में रेणु का महाप्रयाण, सबसे छोटी बेटी सुजाता का सवाल – "मैं लड़के की उम्मीद में लड़की पैदा हुई थी न ?" सुजाता के सवाल से यादों के प्रकोष्ठों का खुलना और बेटे-बेटी को लेकर मैत्रेयी के मन का ऊहापोह, दूसरी बेटी मोहिता का जन्म "एम्स" में ही हुआ था इसलिए अलीगढ़ वाली फजीहत से मैत्रेयी बच गई थी, मैत्रेयी के पति डा.रमेशचन्द्र का सिकुर्रा जाना, गांव के लोगों और पंचो द्वारा उनको दूसरे ब्याह के लिए उकसाना क्योंकि मैत्रेयी ने तीन पुत्रियाँ दी थीं, पुत्र नहीं पर डाक्टर का अपनी बात पर दृढ़ रहना और इस पर कस्तूरी का प्रसन्न होना, पूर्वदीप्ति द्वारा मैत्रेयी की गुरुकुल शिक्षा का वर्णन, मैत्रेयी की तीनों बेटीयों का डाक्टर होना । "बेतवा बहती रही", "इदन्नमम", "चिन्हार" आदि का प्रकाशन, किसी भी पुस्तक को कस्तूरी को समर्पित न करना, 10 जून 1997 को कस्तूरी की मृत्यु "एम्स" में, डा.सुभाष (दामाद) ही उनको एम्स ले गए थे । जिस दामाद ने शुरु से आखिर तक उन्हें सिर-माथे रखा वे ही सामाजिक विधान के चलते उन्हें कन्धा नहीं दे पाए, (क्योंकि दामाद कन्धा नहीं देते) चुपके से डाक्टर द्वारा कुछ फूल चुनकर अकेले जाकर गंगा में बहा आये यह कहते हुए कि रिवाज तोड़कर उन्होंने माताजी का सच्चा तर्पण किया है, अपनी जमीन-जायदाद बचाने के चक्कर में मैत्रेयी कस्तूरी का शोक भी नहीं मना पाती है इस बात को लेकर नम्रता की अपनी मां मैत्रेयी से नाराजगी, तब तक में "चाक" और "झूलानट" के प्रकाशन की सूचना इन सब घटनाओं के बाद तृषावंत जो होयेगा..... "वाले अध्याय में मैत्रेयी पुनः पूर्वदीप्ति का सहारा लेते हुए बेटियों के आग्रह पर मैत्रेयी के साहित्य-प्रवेश की बात करती है जिन्हें हम पहले निर्दिष्ट कर चुके हैं ।

कालक्रमिकता आत्मकथा का एक आवश्यक अंग है, परंतु मैत्रेयी जीने इनका सर्वथा उल्लंघन अनेक बार किया है । "शब्द-सहचयन" और "प्रसंग-सहचयन" की प्रयुक्तियों द्वारा कई बार वह कथा का आगा-पीछा करती हैं । अभिप्राय यह कि स्वरुप आत्मकथा है, परंतु लेखिका ने औपन्यासिक शिल्प का सहारा लिया है या उस शिल्प पर उनकी हथौटी है ऐसा कह सकते हैं । पति के प्रयत्नों से "लकीरें" कविता-संग्रह वहाँ छपता है जहाँ शादी-ब्याह के कार्ड आदि छपवाये जाते है ।[45] कविता पर रमानाथ अवस्थी या बच्चन का प्रभाव था

। उससे मैत्रेयी का साहित्य-जगत में कुछ नहीं बना। लड़कियों का आग्रह कि वह कहानी या उपन्यास लिखें। इस संदर्भ में रामश्री चाची और रामावतार चाचा तथा कृष्णावतार चाचा की बात आती है कि किस प्रकार कृष्णावतार चाचा अपनी ही भौजाई पर बलात्कार करवाता था जिसके चलते रामश्री चाची एक दिन उसकी हत्या कर देती है। रामश्री चाची इन लड़कियों की चचेरी नानी लगती है। वह कितनी माया-ममतामयी थी वह बात सरदारखां वाले प्रसंग से सामने आती है कि किस तरह चाची पराए बच्चों को पालती-पोषती है।[४६] प्रेम-कहानी प्रतियोगिता के संदर्भ में उस पहले प्रेमपत्र का जिक्र जो पुष्पा को किसी लड़के ने लिखा था जब वह चौदह-पन्द्रह साल की थीं और बाद में उसका जिक्र ख्याति-प्राप्त लेखिका मैत्रेयी ने बुंदेलखण्ड कालेज झांसी के अपने व्याख्यान में किया था जब उन्हें अतिथि-विशेष के रुप में आंमत्रित किया गया था।[47] चकबंदी वाले तहसीलदार नायब साहब का तबादला मैत्रेयी के पत्र के कारण ही हुआ था और उससे नाराज होने के बदले उन्होंने कहा था कि मुन्नी लिखती रहना, तुम अच्छे-अच्छों की छुट्टी कर दोगी।[48] उसके बाद पुष्पा का एक सहपाठी से प्रेम-लगाव का किस्सा और उस पर बहु का आश्वासन।[49]

मनोहरश्याम जोशी, मृणाल पाण्डे आदि के उल्लेख, इल्माना की सलाह कि मैत्रेयी सह-सम्पादक से सम्बन्ध जरुर रखे, सोना-रुपा रैस्टूँरा में सह-संपादक को मिलने जाना, 8 अप्रैल 1990 में "साप्ताहिक हिन्दुस्तान में कहानी का छपना, दैनिक "हिन्दुस्तान" के सम्पादक विजय किशोर मानव परिचय, पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों और सह-सम्पादकों का एक कुत्सित पक्ष कि किस तरह वे नवोदितों का शोषण करते हैं, गोडमधर का उल्लेख, मन्नू भंडारी से परिचय और उसके बाद "मच्छी रुखां चढ़ गई" अध्याय में मैत्रेयी के ऊपर उठते जाने की कथा जैसे प्रसंग कहीं सीधे तो कहीं पूर्वदिप्ती से आए हैं। पर इतना तो सहजयता समझ में आता है कि मन्नू भंडारी और उनके जरिये राजेन्द्र यादव से मैत्री सम्बन्ध और यादवजी के मार्गदर्शन के बाद अपनी निजी अनुभवों की पूंजी से पुष्पा मैत्रेयी तक की यात्रा तय करती है।

आत्मकथा के उत्तरार्द्ध में स्थापित लेखिका हो जाने के उपरान्त "अल्मा कबूतरी" के लेखन के लिए खतरों को उठाते हुए भी अपने एक यादव भाई के जरिए कबूतरा बस्ती में पहुँचना, अल्मा कबूतरी के प्रकाशन के उपरान्त उसे सार्क लिटररी एवार्ड मिलना, अत्यधिक ख्याति के कारण कुछ लेखिकाओं की

ईर्ष्याभाजन होना, मन्नू और राजेन्द्र यादव का विवाह-विच्छेद, राजेन्द्र यादव की बीमारी में मैत्रेयी तथा उनके पति रमेशचन्द्र शर्मा उभय की तत्परता और सेवा, सबसे छोटी बेटी सुजाता का विवाह एक अनुसूचित जाति के डाक्टर से करना (इनका जिक्र पहले आ गया है जैसी कई घटनाएं उपन्यस्त् हुई है।)

"गुड़िया भीतर गुड़िया" से निःसृत कुछ विचार-सूत्र

इन विचार-सूत्रों को जानना जरुरी है क्योंकि इनके जरिए ही हम लेखिका की विचारधारा या उनके द्वारा प्रणीत नायिकाओं के विचार-पिण्ड और कार्यकलापों को समझ सकते हैं। अतः बहुत संक्षेप में ऐसे कुछ विचार-सूत्रों को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है

(1) "दोस्ती का विश्वास, सहयोग का भरोसा और आत्मीयता की उष्मा, जो कुछ है, मेरे लिए यही है। सतीत्व के दम पर मुझे स्वर्ग मिल जाए (अगर मिलता हो तो) वह स्वतंत्रता नहीं मिलेगी, जिससे मैं भविष्य की दिशाएं और रास्ते तय कर सकूं। मैं अपनी जिन्दगी के निर्णायक मंडल की अध्यक्ष या जूरी की जज खुद को फैसला दे रही थी। (डा. सिध्धार्थ से दोस्ती और आत्मीयता के सन्दर्भ में।)"[50]

(2) - "माँ, तुम ने यह क्यों नहीं बताया कि ज्ञान बड़ा खतरनाक होता है। जिन्दगी मुहाल कर देता है क्योंकि शान्ति भंग होती है। क्योंकि ज्ञान बदलाव के लिए प्रेरित करता है। काश, माँ तुम मुझे इस ज्ञान से न गुजारतीं।"[51] (मैत्रेयी के मन का हाहाकार जब डाक्टर ने लिंग्विस्टिक कोर्स के इंटरव्यू का कार्ड छिपा दिया था।)

(3) "कंचन, तुम्हारे भाई साब की तरह न जाने कितने डाक्टर-इंजीनियर अपने गांव-कस्बे और शहर छोड़कर यहाँ चले आते हैं। चले आएं, बुराई नहीं, लेकिन यहाँ आकर पीछे छूटी जमीन को मुड़कर देखना नहीं चाहते। (दिल्ली आने पर अलीगढ़ से कंचन का पत्र आता है, तबकी मैत्रेयी की प्रतिक्रिया, ढोला गाती हुई संतो की याद आना।)"[52]

(4) "माताजी का जवाब था - "किताबें और अखबार पढ़ने का, धर्मयुग, त्रिपथगा, साप्ताहिक हिन्दुस्तान जैसी चीजे पढ़ने का तुझे शौक था, मुझे क्या मालूम नहीं ? पर तू मुझे ब्याह तय करने से पहले बता देती कि कवि बनने का तुझे शौक ही नहीं, जुनून है, तो सच्ची लाली, मैं तेरा ब्याह किसी कवि से ही कर देती। अब तो मुश्किल यह है कि डाक्टर की दुनियाँ में मरीज

और दवा, वहाँ कविता का क्या काम ? रमेश (डा.साहब) तेरे लिए क्या करें ? अखबारों के दफ्तरों में फिरें तो ड्यूटी कब करें ? तू पढ़-लिख के ऐसी पराधीन हो जाएगी, मैंने सोचा न था। अरे दिल्ली बड़ा शहर है तो रहा करे। रास्ते मिलते नहीं तो ढूंढे जाते हैं, लाली।"[53] (कस्तूरी की बात)

(5) "अगर तुम्हारी भाषा में कहूं तो शकुन्तला न होती तो दुष्यन्त न होता। द्रौपदी जवान न होती तो अर्जुन न होता, न दुर्योधन! सीता के होने से रावण हुआ।"[54] (डा.शर्मा का कथन मैत्रेयी की इल्माना से मैत्री के बाद)

(6) "हमें अपनी निष्ठा और प्रीतिभरी वफादारी को भूखे रहकर निभाना होता है। करवाचौथ के साथ पति की उम्र का चक्कर तो बेकार ही लगा दिया है।" (मैत्रेयी का इल्माना से कहना)"[55]

(7) "ठीक कर रही हो इल्माना, राजा शुद्धोधन का बेटा सिध्धार्थ अपनी बीबी-बच्चे को छोड़कर भाग गया था, नल दमयन्ती को जंगल में सोती छोड़कर भागा। लोककथाओं के गोपीचंन्द भागे थे। इतिहास का राजा रतनसेन नागमती को छोड़कर भागा था। गांधी कस्तूर बा से बेफिक्र कहीं भी चले गए। ये सब महान हो गए। इनकी वीरगाथाएं बनीं। इनके चलाऐ धर्म स्थापित हुए। आम आदमी भी घर से भागता है तो कहते है साधु हो गया। लेकिन औरत वह घर छोड़ जाए तो बस एक ही बात कि रंडी, वेश्या हो गई। (मैत्रेयी के कथन इल्मान से)"[56]

(8) "इल्माना..... हम ऐसे पौधें के रुप में जन्म लेते हैं, जिन्हें हिलाने-डुलाने और विकसित करने के लिए हवा जरुरी हैं, लेकिन हमारे माली बने लोग कहते हैं बौनसाई छाया में रहा करते हैं। (औरत की गुलामी का प्रतिक बौनसाई)"[57]

(9) "मरीजों का इलाज क्या धर्म, जात और वर्ण देखकर किया जाता है ? नहीं किया जाता। मरीज का जाति धर्म मरीज ही होता है डाक्टर का डाक्टर। लेकिन यहीं इस आपातकाल में सारा का सारा केम्पस हिन्दुस्तान है, दो मुसलमान डाक्टरों के घर पाकिस्तान। (बांग्लादेश के युद्ध के कारण सांप्रदायिक भावनाओं का भड़कना)[58]

(10) "लाली, तुझसे मुझसे ऐसी उम्मीद नहीं थीं। तू तो सच्ची में बच्चा पैदा करने की मशीन हो गई। दो बच्चीयाँ पालकर तेरा जी नहीं भरा था क्या ? मैं तो कहती रही की एक बबली (नम्रता) ही बहुत है। तू पढ़ी-लिखी

नई पीढ़ी की, इतना नहीं सोच पाई कि परिवार-नियोजन भी कोई चीज है।..... खैर माना की तेरी लड़कियाँ नार्मल है, नहीं तो तूने कोई कसर छोड़ी नहीं। क्या जाने झाड़-फूंक के परसाद और टोटकों के नारियल तिल चबाएं हों। रंगे चावल और बताशों की मूठ मारी हो। बाबाओ के कमंडल का जल पिया हो..... मुझे अब तेरा विश्वास नहीं रहा लाली....." (तीसरी बेटी के जन्म पर माताजी का कथन, ध्यान रहे उनका यह आक्रोश तीसरी बेटी के लिए नहीं, तीसरे संतान के लिए है। कस्तूरी की सोच मैत्रेयी से ज्यादा आगे है, इससे यह प्रतीत होता है।)"[59]

(11) "लड़कियों के शिक्षा के बारे में आपने सोचा है कभी ? आपके प्रायमरी स्कूल में लड़के पढ़ेंगे, पढ़ते रहेंगे। शिक्षित पुरुषों की जमाते खड़ी हो सकती हैं। मगर औरतें ? जाहिल ही रहेंगी। जाहिल जिसे चुप रहने का पाठ हम आसानी से पढ़ा सकते हैं।..... अंग्रेजो ने भी तो यही किया था, भारतीय सिपाहियों का पढ़ना रोक दिया था, क्योंकि ज्ञान पाकर वे सवाल करने लगे थे और सवालों से सरकार दहलने लगी थी। खतरे पैदा हो गए थे।"[60] (सोनपाल पटवारी का नंबरदार को समझाना कि स्त्री-शिक्षा कितनी जरुरी है।)

(12) "लोग जानते हैं कि बड़ी जातियों में औरत एक अपवित्र और अशुद्ध-सी प्रजाति है। इसको बिना पति के किसी पवित्र संस्कार को करने की इजाजत नहीं। जब कभी मंगल आयोजनों में चौक पर पंड़ित के सामने बिठाई गई है, वह विवाह संस्कार ही हैं, जिसमें पति के लिए ही सबकुछ माना जाता है, वरन् कथा भागवत्, यज्ञ-हवन में स्त्री को घर के मुखिया के तौर पर बैठने नहीं दिया जाता। भले घर का छोटा-सा लड़का बिठा दिया जाए। हम अस्पृश्य, हम बहिष्कृत क्या मौका पाते ही एक हो गए थे ? नहीं तो उन्होंने अपने संस्कारों के लिए लड़की का चुनाव क्यों किया ? आज तक किसी मंदिर की मुख्य पुजारिन, किसी धर्मपीठ की शंकराचार्य, किसी धर्म की आदि गुरु स्त्री नहीं। भारतीय समाज में ही नहीं पश्चिमी देशो के ईसाई धर्म ने भी किसी औरत को पोप नहीं स्वीकार किया, न मुस्लिमो के यहाँ काजी या मुल्ला के रुप में औरत दिखाई देती है।"[61] (सिकुर्रा गांव की छोटी जातियों के लोगों ने मैत्रेयी को अपना पंड़ित बनाया था।)

(13) "रानी बेटी ! मैं मरुं तो तुम भी मत रोना। अपनी जिम्मेदारियों को देखते हुए तुम्हें रोने का समय नहीं मिलेगा। तुम माताजी की नातिन हो, उन्हीं

की तरह साहस की कोई बात करो । हौसले का नाम था कस्तूरी, जो हमारे स्त्री-वंश की अब तक सबसे ज्यादा ऊर्जावान, दूरदर्शी, गतिशील और प्रगतिगामी कड़ी साबित हुई । फिर एक बार यही कि "नानी के नक्शे धेवती में" कहावत तुम्हारे रुप में चरितार्थ हो" । (मैत्रेयी का कथन नम्रता को कस्तूरी की मृत्यु पर जमीन-जायदाद के काम में उलझकर उनके लिए शोक न मनाने पर ।)[62]

(14) "साहित्यकार, कलाकार उम्र को सालों से नहीं नापते । उनकी रचनात्मकता जब तक सक्रिय रहे, वे युवा रहते हैं । रविशंकर (सितारवादक) अज्ञेय और रेणु (साहित्यकार) किशोरकुमार, (गायक) उम्र के ढ़लते पड़ाव पर इश्क़ मोहब्बत को परवान चढ़ाते रहे ।"[63] (सम्पादकजी की नियत के सदंर्भ में मैत्रेयी की टिप्पणी ।)

(15) "मर्द के सामने औरत कुछ ज्यादा ही औरत बन जाती है । बस यहीं से गड़बड़ होने लगती है ।..... याद रखना कि साहित्य की दुनियाँ भी बेईमान, झूठे और मक्कार लोगों से भरी पड़ी है । गन्दगी क्या होती है, कहाँ होती है, इस बात को एक ही तरीके से नहीं जाना जा सकता । हां, खुद को बचाया जा सकता है । (मैत्रेयी को जानने-परखने के बाद सह-सम्पादकजी का कथन)"[64]

(16) "आप लिख सकती हैं क्योंकि आपके पास अनुभव है । इन दिनों साहित्य में लोग अनुभव अर्जित करके नहीं आते, शैलियां इजाद कर रहे हैं । लेखनी सूखती जा रही है । नहीं समझ रहे कि प्राइवेसी लिखने के लिए चाहिए, रचने के लिए तो उन्हें बाहरी संसार में निकलना होगा । समाज से नहीं जुड़ेंगे, पैठ नहीं बनाएंगे, खुद ब खुद निष्क्रिय होते जाएंगे ।"[65] (मासिक कथा-पत्रिका के सम्पादक का कथन, साथ ही वे दवाइयों की सूची थमा देते हैं जब उन्हें ज्ञात होता है कि मैत्रेयी के पति "एम्स" में डाक्टर हैं ।)

(17) "असलियत में हमारा रोल पति की खादिमा, दासी और गुलाम होना है । सलाह-मशविरा कौन करता है, आज्ञा देने का चलन है । पत्नि होकर सम्मान नहीं, अपमान के अभ्यस्त होने में ही कुशल है ।"[66] (गोडमधर के लिए कार नहीं भेज सकने के संदर्भ में मैत्रेयी की टिप्पणी)

(18) "दुखों को दिल में जमा करते जाओ, वे खाद की तरह ताकतवर होते जाते हैं, जो आगे नई पौध को बढ़ाकर खड़ा करते हैं।"[67] (मैत्रेयी का चिंतन)

(19) "असल समस्या तो प्रेम-विवाह के बाद शुरु होती है। लड़का-लड़की, माता-पिता और परिवार द्वारा दिए धर्म, जाति और रीति-रिवाजों को तोड़ देते हैं मगर जब ऐसे ही सरोकार खुद से जुड़ते हैं तो उनमें दुविधा पैदा हो जाती है। अन्तर्द्वन्द में फंस जाते हैं। बहुत जगह ऐसा देखने में आता है कि पति मंदिर जाता है और पत्नि नमाज़ पढ़ती है। कहने को उनके पास धार्मिक स्वतंत्रता है, मगर यह स्वतंत्रता उन्हें एक नहीं होने देती। कई बार इस व्यवहार से कुण्ठाओं का जन्म होता है। यही जातियों का चक्कर है। लड़की छोटी जाति की है और लड़का बड़ी जाति का, विवाह के समय वे किसी भी जाति के नहीं होते। धीरे-धीरे दोनों के भीतर जातियाँ सर उठाती हैं। लड़की को दोहरा अपमान सहना होता है स्त्री होने का और नीची जात होने का। यदि लड़का छोटी स्थिति में है तो उसके पुरुष-अहंकार को बात-बात पर ठेस लगती है। महत्वहीन भावनाएँ सिर चढ़कर बोलती हैं और जिन्दगी कशमकश के हवाले हो जाती है। कहानी इस कशमकश को रेखांकित करती जाए कि कैसे बाहरी स्थितियों से लड़ने वाले अपने भीतरी मोर्चो पर संस्कारों से हारते है।"[68] (राजेन्द्र यादव का कथन)

(20) "मैंने आचार्य चाणक्य की विद्वता को चुनौती दी है। वे कहते हैं - धर्म की रक्षा धन से, विधा की रक्षा साधना से और गृहस्थी की रक्षा पतिव्रता स्त्रियों से बताई गई है। निश्चित ही मैं "आपस्तम्ब धर्म" सूत्र के विरुद्व जा रही हूं, "बृहदा-रण्यक उपनिषद" मुझे शाप देगा, जिसमें स्त्री के लिए अपने पति के सम्भोग को हर हालत में चरितार्थ करना बताया गया है।"[69]

(21) "प्रियतम तुम्हारी दुनिया में सुख तो है मगर घुटन उससे ज्यादा। सुविधा भी है, लेकिन सिकुड़े-संकरे दायरों के बंधन..... सच मेरे स्वभाव में परिवर्तन की बुरी लगन है, मैं तुम्हारे विवाह लगन के योग्य नहीं थी।"[70] (मैत्रेयी का अपने दाम्पत्य-जीवन से सम्बद्व वक्तव्य।)

(22) "बात यह है मेरी जान, किताब की सारंग, सारंग नहीं लगती, मुझे वो तुम लगती हो, एक दम तुम"[71] (चाक पढ़ने के बाद डाक्टर साहब का कथन)

(23) "लिखनेवाले बहुत हैं बबली, लेकिन जब उनके बच्चों के ब्याह की बात आती है तो कहते हुए पाए जाते हैं - प्रेम करो, प्रेम विवाह करो, हम तुम्हारे साथ हैं। बस शूद्र न हो, मुसलमान या ईसाई नहीं चलेगा।"[72] (छोटी बेटी सुजाता के प्रेम-विवाह के संदर्भ में क्योंकि डा.नवल एस.सी. थे।)

(24) "और सुजाता का विवाह करके उसके पिता में यह आत्मविश्वास आया है कि मुझे लगता है, आत्म-संशोधन करना हो तो आदमी को बेटी का पिता होना चाहिए, क्योंकि जब उसे रुढ़ियों, कर्मकांडों और शास्त्रीय नियमों से उलझाकर बार-बार नीचा दिखाया जाता है, बस यहीं से अपनी बाध्यता तोड़कर स्वतंत्र फैसलों की ओर बढ़ता है।"[73] (लेखिका की टिप्पणी अपने पति के बारे में।)

(25) "ये लोग (याने कबूतरा) तुम्हारे पुलिस विभाग, कानून और राजतंत्र की तरह खुदको किसीसे छिपाते नहीं। न किसी खतरे से ही खुद को बचाते, बस अपने हाथ-पांव साबूत रखने के लिए जंगल में भाग जाते हैं। क्या करें, भूख उनका सबसे खूंखार देवता है। उस देवता के पुजापे के लिए हाथ-पांव चाहिए, तो चोरी-चकारी लाजमी हो जाती है। राहजनी करते हुए बात मार-काट तक पहुंच जाए, तो कोई क्या करें ? काका, खेती नहीं, मजूरी नहीं, तो कोई आदमी धरती फोड़कर अन्न कहाँ से ले आए, जबकि उनके पास फोड़ने के लिए अंगूठे भर अपनी धरती भी नहीं। जो आजीविका है, जैसी-तैसी है, उसीसे ईमानदारी बरतनी।"[74] (सोबरन का कथन कबूतराओं के पक्ष में।)

(26) "जता रही है कि कज्जा (कबूतरा ऊंची जाति के लोगों को "कज्जा" कहते हैं।) लोगों का धर्म उनके समाज और राजनीति में शुद्धता का बोलबाला है। इसलिए अशुद्धता के खाते में डाले रखी है। अशुद्धों से छिपकर ही मिला जाता है। क्या स्त्री की योनि अशुद्ध नहीं होती ?"[75] (कबूतरा बस्ती में मैत्रेयी की सोच कबूतरी स्त्रियों की बातें सुनते हुए।)

(27) "तू लिखती है, यह बात अलीगढ़ तक आ गई है। लोग मुझको ताने सुनाते है - कस्तूरी की लड़की कविता कहानी लिखकर नाम कमा रही है, दामाद तबाह हो रहा है बेचारा। लाली, तू लिख, खूब लिख पर रमेश (मैत्रेयी के पति) को परेशान न कर।..... दामाद तो फिर डाक्टर आदमी, कविता-फविता नहीं समझते, गुस्से होते हैं। मैंने तो पहले ही कहा था ब्याह मत कर, तेरे लक्षण ब्याह वाली लड़कियों से अलग है।..... माताजी की चिट्ठी या मेरी

पांडुलिपि की चिन्दियां मेरा कलेजा तार-तार हो गया और दिल से बस यही निकला - माताजी, मैं अब विधवा कब हूंगी ?"[76] (राजेन्द्र यादव को लेकर पति-पत्नी में झगड़ा हो गया था। मैत्रेयी ने अपनी मदद के लिए माताजी को बुलाया था, माताजी तो नहीं आयी थीं पर पत्र लिखा था। उपर्युक्त पंक्तियाँ उस पत्र से है और उसके बाद मैत्रेयी की प्रतिक्रिया।)

(28) "किसे याद रहता है इन दुर्धर्ष घड़ियों में कि राजेन्द्रजी कितने दुष्ट और दुराचारी थे। जिन्दगी पर बन आए तो दोष ढूंढने की मोहलत कहां होती है ? काश मैं उनके इतने नजदीक रही होती कि दुश्चरित्रता देख पाती। वे मेरे लिए एक शिक्षक, गाइड और बड़े लेखक के अलावा कुछ नहीं है।"[77] (मैत्रेयीजी का कथन राजेन्द्रजी को जब अस्पताल में भर्ती किया था उस समय का)

(29) "पति तो पत्नी को दुख ही देता है। कोई औरत यह कहते सुनी है कि उसका पति उसे सुख दे रहा है; भले बेचारा पति उसे सोने की लंका दे दे। तुम्हारा पति होने के नाते मैं कहूं कि तुम भी मुझे दुख देती हो जोकि मैं कहता हूं यह एक नार्मल बात है। जानम, जब गोष्ठियों में जाती हो बाहर तो हमारा दुख इंतिहा पर होता है। शक-संदेह ऐसे-बैठते हैं कि जैसे गैर मर्दों के साकार रुप हों और तुमसे अठखेलियाँ करते हों। बताओ कि इतना कष्ठ पाकर मैं तुम्हे घर से निकाल देता हूं ?"[78] (डाक्टर साहब का कथन मैत्रेयी को।)

(30) "जवाब मांग रहे हो, बोलने का मौका दे रहे हो, तो बस इतना ही कहूंगी लोग प्रशंसा देते हैं, प्यार करते हैं, धन-दौलत भी दे सकते हैं, मगर ऐसे बिरले ही होते हैं कि जो सच्चा भरोसा देते हैं।"[79] (मैत्रेयीजी का कथन अपने पति के प्रति। यहाँ एक बात हम कहे बिना नहीं रह सकते कि मैत्रेयीजी कुछ भी कहें अपने पति के सन्दर्भ में, लेकिन हमें तो डाक्टर साहब ऐसे बिरले लोगों में ही लगते हैं।)

इस प्रकार गुड़िया भीतर गुड़िया में सन् 2002 तक के ब्यौरे हैं। उसमें गोधरा कांड़ और उसके बाद के नरसंहार का उल्लेख है। "अल्मा कबूतरी" और "कही ईसुरी फाग" तथा मैत्रेयीजी की स्त्री-विमर्श की पुस्तक "खुली खिड़कियों" का भी जिक्र डा.निर्मला जैन की टिप्पणी के रूप में आया है। लब्बोलुबाव यही कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा हिन्दी की एक बहुचर्चित-बहु विवादित लेखिका हैं। रेणु, राजेन्द्र यादव, मण्टो, मटियानी तस्लीमा,

तहमीना दुरानी, अजीत कौर आदि ऐसे लेखक-लेखिका हैं जिनकें बारे में अच्छे-से अच्छा और बुरे-से बुरा कहने वाले लोग मिल जायेंगे। मैत्रेयी का नाम भी अब इस सूची में जुड़ सकता है।

आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी के उपन्यास :

"कस्तूरी कुण्डल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया" इन दो आत्मकथाओं में हमें मैत्रेयी के रचना-संसार का पिण्ड मिलता है। "स्मृतिदंश" से लेकर "अल्मा कबूतरी" तक के रचना-प्रसंगों की चर्चा इनमें उपलब्ध होती है। बाद के उपन्यासों में "त्रिया हठ" पुनर्पाठ है "बेतवा बहती रही" का, तो गुनाह-बेगुनाह में "फाइटर की डायरी" पर आधारित है। परंतु उपन्यास में व्यक्त विचारधारा स्त्रियों की पक्षधरता, उसमें व्यक्त स्त्री-विमर्श आदि के मूल में तो बही सबकुछ है जो उनकी आत्मकथाओं में कहीं-न-कहीं अभिव्यंजित हुआ है। अब हम उनके उपन्यासों पर क्रमशः विचार करेंगे इन दो आत्मकथाओं को केन्द्र में रखते हुए।

(1) स्मृतिदंश :

यह मैत्रेयी का प्रथम उपन्यास, बल्कि उपन्यासिका (लम्बी कहानी) है। जिसका प्रकाशन सन् 1990 में हुआ था। यह कथा-नायिका भुवन की राम-कहानी है जिसमें उसकी कथा-व्यथा का चित्रण करुणा और भावुकता के साथ किया गया है। मैत्रेयीजी को इसे लिखने की प्रेरणा सह-सम्पादक महोदय ने दी थी इसका जिक्र "गुड़िया भीतर गुड़िया" आत्मकथा में आया है। यथा-देखो तुम लम्बी कहानी लिख लेती हो, उपन्यासिका क्यों नहीं लिखतीं ?..... हाँ, छोटी सी ही, किताब छपेगी तो चर्चा होगी।"[80] और उसके बाद मैत्रेयी ने अपनी स्मृतियों को संजोकर यह भावुकतापूर्ण कृति की रचना की थी। डा.गोपालराय ने अपने "हिन्दी उपन्यास का इतिहास" में लिखा है कि "स्मृतिदंश और बेतवा बहती रही" दोनों ही कथा की दृष्टि से बहुत मार्मिक हैं, किसी भावुक पाठक की आंखो को अश्रुपूरित कर देने वाले। दोनों ही उपन्यासों में परंपरागत पुरुष समाज द्वारा स्त्री पर होने वाले अत्याचार का अंकन किया गया है। पर औपन्यासिक विजन और यथार्थ की गहरी समझ की दृष्टि से इनका विशेष महत्व नहीं है। दरअसल उपन्यासकार के रुप में मैत्रेयी की पहचान उनके "इदन्नमम" नामक उपन्यास से निर्मित हुई।"[81] स्मृतिदंश की भुवन उतनी ही भावुक और कमजोर है जितनी स्वयं मैत्रेयी उस समय थी। वह समय 1990 का था। यह उनके लेखनका संघर्षकाल था। इस रचना के संदर्भ में लेखिका

ने अपनी आत्मकथाओं में भी विस्तार से खास कुछ कहा नहीं है। अतः इतना ही कहा जा सकता है कि हमारे पितृसत्ताक समाज में विशेषतः ग्रामीण समाज में जो सामंतवादी मूल्य हैं और उनके चलते स्त्रियों पर जो अत्याचार हो रहे हैं, उनके साथ जो अन्याय और भेदभाव बरता जा रहा है उसका चित्रण लेखिका ने उस तरह से किया है जैसा कि तब तक लेखिकाएं करती थी और कदाचित् इसका दंश लेखिका स्वंय महसूस कर रही थी और इसीलिए शायद शीर्षक रखा था "स्मृतिदंश"। लेकिन इसकी भुवन ठीक उस तरह की नहीं थीं जैसा कि मैत्रेयी चाहती थीं, अतः उसकी भरपाई उसके पुनर्पाठ समान उपन्यास "अगनपाखी" में उन्होंने कर दी है।

(2) "बेतवा बहती रही":

"बेतवा बहती रही" के शीर्षक की प्रेरणा कदाचित् "धीरे बहो दोन" से लेखिका को प्राप्त हुई है। क्योंकि इसकी रचना के पूर्व उनके मार्गदर्शक सह-सम्पादक महोदय ने "धीरे बहो दोन" को पढ़ जाने का परामर्श दिया था।[82] इस उपन्यास से भी लेखिका को संतोष नहीं हुआ था। लिख तो दिया था भावुकता की रौ में, क्योंकि सह-सम्पादकजी तथा उनके जैसी सोच रखने वालों को "अबला जीवन" हाय तुम्हारी यही कहानी; "आंचल में है दूध और आंखो में पानी" वाली नारी-छवि ही पसंद है। यहाँ तक की नवभारत टाइम्स के तत्कालीन सम्पादक पंडित विधानिवास मिश्रजी ने भी अपनी सम्पादकीय में "बेतवा बहती रही" की भावात्मक छवि की सराहना की थी।[83] पुरुष मानसिकता स्त्री को हमेशा कोमल और भावुकता की छवि के रूप में ही देखना चाहती है, वह उसका सबला रुप नहीं "अबला" रुप हीं चाहते हैं ताकि उसका शिकार किया जा सके, शोषण किया जा सके। अतः मैत्रेयी प्रस्तुत उपन्यास की "उर्वशी" का चित्रण उसी रुप में करती है, परंतु उसके भीतर बैठी हुई कस्तूरी की आत्मा संतुष्ट नहीं थी। वे स्वयं महसूस करती हैं कि-"मैं अपने उपन्यास "बेतवा बहती रही" में उर्वशी के चरित्र और उसके पुरुषों से सम्बन्धों को ठीक से विकसित नहीं कर पाई। उपन्यास में उर्वशी का दुख-सुख नहीं, गली हुई करुणा है। मैं जानती हूं कि रेणु के पात्र अपने दुख में, मुश्किल में हंसते-हंसाते है। जैसे शोक को संगीत में बदल रहे हो। मगर "बेतवा बहती रही" की स्त्रियां जिन्हें डरकर रहना है, रोकर जीना हैं और इसी तरह मृत्यु तक का समय काटना है। वहाँ करुणा कलित ह्रदय की बातें हैं, आंसुओ की

झालरें हैं।"[84] तस्वीर की मानों यही शोभा है। और "बेतवा बहती रही" की उर्वशी लेखिका के तस्वीरनुमा लगती है, यथार्थ या वास्तविक नहीं जो लेखिका ने अपने बुंदेलखण्ड के गांवो में देखी है। इस प्रसंग में मैत्रेयी अपने स्कूल के दिनों का एक प्रसंग बयान करती है स्कूल में "हाड़ी रानी" की बात निकलती है। हाड़ी रानी का पति युद्ध में जा नहीं रहा था, आखिर उसने अपना शीश काटकर थाली में रख दिया, तब वह युद्ध में चला गया। लोग वीरांगना मानते हैं, परंतु तब मैत्रेयी उसे वीरता की नहीं मजबूरी की मिसाल मानती है। यह बलिदान नहीं आत्महत्या की कहानी है। आत्महत्या इसलिए कि पति पत्नी के चरित्र की चिन्ता किए बिना निश्चिंत होकर युद्धभूमि में जा सके।[85] इसी तरह हमारे यहाँ स्त्रियों की आत्महत्या या हत्या को त्याग और बलिदान का मुलम्मा चढ़ाकर पेश किया जाता है। "बेतवा" की उर्वशी भी उसी प्रकार की है, जब कि मैत्रेयी उसे बुंदेलखण्ड की एक सच्ची स्त्री - जिसमें मानवोचित प्रेम, सेक्स आदि के भाव हैं। - के रुप में चित्रित करना चाहती थीं। वस्तुतः हमारे सामंती संस्कारों में स्त्री को दो ही रुप में देखा जाता है। देवी और कुल्टा या वेश्या। यदि स्त्री पुरुष के कहे अनुसार चलती है, रुढ़ियों और परंपराओं का निर्वाह करती है तो वह देवी है और यदि नहीं तो कुल्टा या वेश्या है। मैत्रेयीजी ने अपनी आत्मकथा में बताया है कि वह स्त्री को उसके मानवीय रुप में देखना चाहती है और इसीलिए उसकी पूर्ति उन्होने त्रियाहठ में की है। मैत्रेयीजी "बेतवा" की उर्वशी के मरण का प्रायश्चित करना चाहती है। वह स्त्री के उस आंतरिक भाव को प्रकट करना चाहती है कि "उर्वशी कहे, पति का नहीं पति का पहली पत्नी से उत्पन्न बेटा मेरी उम्र का है, में उससे सम्भोग की इच्छुक हूं। उसे देखकर मेरी योनिकता जागती है।"[86] मैत्रेयी रेणु की तस्वीर के सामने स्वीकार करती है कि "बेतवा बहती रही" लिखकर मैंने अन्याय नहीं, स्त्री के प्रति अपराध किया। अपनी कलम को कायर बनाया है।[87]

इसी प्रकार की बात मुंशी प्रेमचंद ने एक स्थान पर निर्मला के मुंह से कहलवायी है - "पर न जाने क्यों उसे (मंसाराम को) अपने पास देखकर मेरा ह्रदय फूला न समाता था। इसलिए मैंने उससे पढ़ने का स्वांग रचा, नहीं तो वह घर में आता ही न था। यह मैं जानती हूं कि अगर उसके मन मे पाप होता, तो मैं उसके लिए सबकुछ कर सकती थी।"[88] इस पर कृष्णा जब निर्मला को टोकती है कि वह कैसी बातें मुंह से निकाल रही है। तब निर्मला उससे कहती

है – "हाँ, हाँ, यह बात सुनने में बुरी मालूम होती है और है भी बुरी, लेकिन मनुष्य की प्रकृति को कोई नहीं बदल सकता। तू ही बता, एक पचास वर्ष के मर्द से तेरा विवाह हो जाए तो क्या करेगी ?"[89]

"बेतवा बहती रही" की विधवा उर्वशी का भाई अपने लालच के लिए एक बूढ़े के संग उसका पुनर्विवाह करा देता है। ऐसी स्थिति में "त्रिया हठ" की उर्वशी यदि अन्यथा सोचती है तो वही सही है। नारी का मानवीय रुप ऐसा ही होता है।

(3) इदन्नमम :

"गुड़िया भीतर गुडिया" में मैत्रेयीजी ने लिखा है कि "बेतवा बहती रही" की नायिका उर्वशी के मरण का प्रायश्चित वह करना चाहती थीं और उसी उपक्रम में इदन्नमम की रचना होती है जो मैत्रेयीजी को हिन्दी के शीर्षस्थ उपन्यासकारों की पंक्ति में ला खड़ा कर देता है। "बेतवा वहती रही" छपने के एक साल बाद ही इदन्नमम सामने इसलिए आया कि संस्कारों को लेकर मेरा मानसिक संतुलन बिगड़ने लगा। और इदन्नमम ने प्रमाणित कर दिया कि अब मैं पूरी तरह किसी साहित्यिक गुण्डे के गिरोह में चली गई हूं।"[90] मैत्रेयी के लेखन में "इदन्नमम" के प्रकाशन को हम एक "टर्निग पोइण्ट" कह सकते हैं। मैत्रेयी का मानों कायाकल्प हो गया है और उनका यह कायाकल्प ही शायद कइयों को चिढ़ाने लगा है। वस्तुतः यह मैत्रेयी के भीतर की कस्तूरी का जागना है। इस संदर्भ में वोल्टेयर का एक कथन स्मृति-पटल पर छा रहा है। - "IT IS NOT MORE SURPRISING TO BE BORN TWICE THAN ONCE; EVERYTHING IN NATURE IS RESURRECTION"[91]

अर्थात् एक बार नहीं अपितु दो बार जन्म लेना यह आश्चर्यजनक नहीं है; प्रकृति में यह सब होता ही है। मतलब कि मैत्रेयी के भीतर की गुड़िया ने जन्म लिया है।

इदन्नमम की रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में मैत्रेयी ने लिखा है – "उर्वशी के बरक्स मुझे वह आठ-नौ वर्षीया लड़की याद आयी, जो एक ब्याह के उत्सव के दौरान कोठे के अंधेरे कोने में चुपचाप बैठी अपने घुटनों पर फ्रोक का घेर बार-बार फैलाती थी कि टांगें ढंकी रहे। वह मेरे सामने आई तो पूछा – "यहाँ क्यों ? बाहर बारात आ रही है।....." पुलिस आजै है। हमाये वारंट है।..... मैं चौंकी। और फिर वह केस और मैं..... (प्रेम कहानी नेहबंध)..... 1969 की

बात 1992 में याद आयी और फिर मेरा सफर खिल्ली (श्यामली), जुझारपुरा (सोनपुरा) एरच उरई मोंठ..... के लिए।..... (यह) मन्दाकिनी थी या मैं थी ? लेखिका थी या "बेतवा बहती रही" की प्रायश्चितकर्ता ? अकुंठ जीवन, साहस के साथ व्यक्तित्व की तेजस्विता। ऐसा मैं नहीं कह रही, सुधी समीक्षकों और सजग पाठकों ने बताया।"[92]

सन् 1994 के विश्व पुस्तक मेले में "इदन्नमम" को पुस्तक रुप में देखकर लेखिका अभिभूत हो गई थी। उसमें राजेन्द्र यादव की संक्षिप्त भूमिका "अप्प दीपो भव" के अंत में लिखा गया है - कामना करता हूं कि "विशिष्ट और महत्वपूर्ण" होने का बोध जगाने से पहले ही मैत्रेयी कुछ और इतना ही सहज लिख डालें सेमिनारों - गोष्ठियों में जगमगाते शहरी रचनाकार होने के प्रलोभनों से अपने को बचाए रखते हुए.....।"[93]

"इदन्नमम" के पीछे लेखिका की कितनी महेनत है इसका पता तो इस बात से चलता है कि पांच सौ पच्चीस पृष्ठों के लगातार सात ड्राफ्ट करने के बाद कृति का निर्माण हुआ था। परंतु जो सह-सम्पादक मैत्रेयी को लेखिका होने के गुर सिखा रहे थे, उनका ही मुंह फीका पड़ जाता है। होना तो यह चाहिये था कि वह "इदन्नमम" के प्रकाशन और उसके कारण बनती मैत्रेयी की पहचान से उनको प्रसन्नता होनी चाहिए थी, परंतु उसके विपरीत होता है। उनकी प्रतिक्रिया बड़ी तिक्त और कटु है -

"तुम्हारी जैसी मासूम औरतें साहित्य में आती है। हमसे जुड़ती हैं। जब हम उनको रहने के लिए साहित्य का यह मंदिर देते हैं, वे शुद्वता, पवित्रता और पूजा जैसी महान चीजों से उकताने लगती है। तुम भी उनमें से एक हो। जाओ, आगे बढ़ जाओ, उसी राह जिसके काबिल तुम हो। तुम जाओगी उन सभा-गोष्ठियों मेहफिलों में जहाँ साहित्य कम, शराब ज्यादा होती है। जहाँ साधना कम शागिर्दी (चापलूसी) के दौर चलते है। तुम जाओ, जीवन मूल्य जहाँ मनी और सेक्स है। सारी संवेदना सुरा-सुन्दरी से लिपटी हुई..... वहाँ रचनाधर्मी नहीं, माफिया डोनों से करना मुलाकात रात के अंधेरों में। "मछुआरे" और "धीरे बहो दोन" महाश्वेता की "हजार चौरसीवे की माँ" की ओर से कर लो बन्द कपाट और सुनो अट्टहास राजेन्द्र यादवों के / नामवरों की भेदती नजर तुम्हारी रचनात्मकता को कर डालेगी क्षत-विक्षत..... तुम इसी लायक हो। यह मैंने महसूस किया है, औरत आखिर माया, ठगिनी और विष का घट होती है, जिस पर मुंह मारने वाले जहाँ मिलते हैं, वह उधर ही चल देती है। अब न

नसीब हो तुम्हें कभी सोना-रुपा और कनाट प्लेस के छोटे-छोटे चायघरों के सुरक्षित रेस्टोरेंट । तुम जिन्दगी भर तरसो किसीके मोहक मिलन को और छटपटाओ मीठी प्रतिक्षा करने के लिए । वे दैत्य तुम्हें निकलने नही देंगे अपनी हंस गुफा से.....[95]

तो "गोडमधर" ने तो मैत्रेयी पर सीधे चोरी का ही आरोप लगा दिया ।[96] जबकि "नेहबंद" कहानी के रुप में मैत्रेयी यह कहानी पहले राजेन्द्र यादव को और सह-संपादक महोदय को "प्रेम कहानी विशेषांक" के लिए दे चुकी थी, जब गोडमधर से मैत्रेयी की मुलाकात भी नहीं हुई थी । इस संदर्भ में मैत्रेयी की टिप्पणी है – "गोडमधर शायद इस भाव से आहत है कि चीजें जहाँ पहुंच गई है, वहाँ मुझे अब उनकी जरुरत नहीं है ।"[97]

दूसरी तरफ मन्नू भंडारी है जो उज्जैन से पत्र लिखती है कि "इदन्नमम" को पढ़कर उसकी पीठ थपथपाने को मन करता है ।[98] "इदन्नमम" के कारण लेखक-लेखिकाओं, विशेषतः लेखिकाओं में, और "इदन्नमम" की जमीन जहाँ की है बुंदेलखण्ड के वे गांव और उनके लोगों में जो बावेला मचा उसके कारण डाक्टर साहब (मैत्रेयी के पति) भी कुछ नाराज हुए थे । इस बात को लेकर मन्नूजी का कहना था – "अरे, मैत्रेयी । लिखती रहो, लिखकर ही एक दिन खुद को प्रूफ कर दोगी कि डाक्टर साहब भी मान जाएंगे, उनकी पत्नी असल में क्या थी ।"[99]

उपन्यास को देशकाल वही है जो इन आत्मकथाओं में वर्णित है, अर्थात् बुंदेलखण्ड के झांसी, ग्वालियर, मुरेना, मोंठ, उरई के आसपास के गांव-खेड़े, क्योंकि कस्तूरी अपनी महिला-मंगल की नौकरी के कारण गांव-गांव डोलती रही और मैत्रेयी को पढ़ाई के कारण जिन गांवों में स्कूल-पाठशाला होती थी, वहाँ किसी परिचित या रिश्तेदारी में रहना पड़ता था । समय ब्रिटिश-शासन के अंतिम दौर से लेकर स्वाधीनता प्राप्ति और उसके कुछ वर्ष बाद तक का है । इनमें वर्णित जो पात्र हैं उनमें पुरानी पीढ़ी के कुछ लोग हैं जिनमें महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल नेहरु के विचारों का प्रभाव देखा जा सकता है ।

उपन्यास की बोली-बानी बुंदेलखण्ड की है, यहाँ तक कि कहावत-मुहावरे, कुछ विशिष्ट शब्द-प्रयोग, तीज-त्यौहार, कुछ मान्यताएं, लोकगीत, शादी-ब्याह के गीत ये सब मिलकर उसे आंचलिकता का रुप देते हैं पर जैसा कि हम निर्दिष्ट कर चुके है "इदन्नमम" आंचलिक उपन्यास नहीं है । उपन्यास

में जो समस्याएं निरुपित हुई हैं, वे भी उसके समय को रेखांकित करने वाली हैं । इन समस्याओं में कौमी एकता की समस्या है कि किस तरह बाबरी-मस्जिद-ध्वंस के बाद गांवों का कोमी एखलास भंग हुआ है और हिन्दू और मुसलमानों में दरार पड़ गई है । पंचमसिंह ददृदा और चीफ साहब पक्के दोस्त हैं और बाबरी मस्जिद वाली घटना के बाद जो गांव में गुंडई और लंफगई चलती है उसमें अपनी जान की परवाह किए बिना ददृदा चीफ के साथ खड़े रहते है पर अंततः चीफ को गांव छोड़कर शहर जाना पड़ता है । अन्य समस्याओं में आरक्षण की समस्या, राजकीय नेताओं के नाकारा होते जाने की और माफिया तत्वों से सांठगांठ की समस्या, ठेकेदारों और राजनेताओं की माफियागीरी, आजादी के बाद खादी और खाकी के मिल जाने से पनप रहे नवधनिक वर्ग के लोगों में संस्कारहीनता की समस्या, गरीब और मजदूर स्त्रियों के यौन-शोषण की समस्या, दूसरे प्रदेश से आये हुए विस्थापित मजदूरों और उनके तमाम प्रकार के शोषण की समस्या, गांवों में फैलती बीमारियों की समस्या, बलात्कार और स्त्री-हत्या की समस्या, लोगों की नीयत के डोलते दूसरों की जमीनें धोखाधड़ी से हड़प लेने की समस्या जैसी समस्याओं का आकलन हुआ है जो उपन्यास में निरुपित देशकाल को स्पष्ट करने वाली सिद्ध होती हैं और इन सबका निरुपण उनकी आत्मकथाओं में मिलता है जिसका वर्णन हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में कर चुके हैं ।

उपन्यास की नायिका मन्दा है जो एक कमजोर लड़की से लौहसंकल्पिनी सबला नारी के रुप में परिवर्तित होती है । कौन है यह मंदा ? ब्याह के अवसर पर एक अंधेरे कोने में चुपचाप बैठी लड़की ? जिसका जिक्र लेखिका ने किया है । हाँ, कहानी तो लेखिका ने वहाँ से उठायी है जो "नेहबंद" के रुप में विकसित होते हुए "इदन्नमम" तक चली आई है । भले लेखिका कहे "यह मेरा नहीं है" । पर उस कमजोर लड़की को मन्दा बनानेवाली तो मैत्रेयी ही है । मैत्रेयी भी कमजोर भीरु महिला से एक ऐसी धांसू लेखिका हो जाती है कि पहले जो उनपे दया खाती थीं, वे अब उनकी ईर्ष्या करने लगीं । मंदा, बऊ (मंदा की दादी और सोनपुरा के जमींदार महेन्द्रप्रतापसिंह की माता), प्रेम (मंदा की मां), सुगना (मंदा की सहेली), कुसुमा भाभी, देवगढ़वारी पंचमसिंह की धर्मपत्नी), दारोगिन (विक्रमसिंह की पत्नी), मोदिन काकी आदि उपन्यास के नारी पात्र; और गनपत (बऊ का नौकर और महेन्द्रप्रतापसिंह का विश्वसनीय व्यक्ति), पंचमसिंह (ददृदा श्यामली के प्रतिष्ठित बुजुर्ग), मोदी, चीफ (अनवर

हुसैन - मोदी और चीफ दद्दा के परम मित्र है) गोविन्दसिंह कक्का, अमरसिंह (दद्दा के सबसे छोटे भाई जिनको परिवार में सब दाऊजी कहते है), मिठू कक्का, ढड़कोले चमार, श्यामलाल, अर्जुन, पन्नी माते, शकील (अनवरी बुआ का लड़का); कैलाशसिंह (मन्दा के दूर के रिश्ते के मामा जो बचपन में ही मंदा का बलात्कार करते हैं), डबल बब्बा (लखना डाकू), डा.मकरन्द (मकरन्द और मंदा की सगाई हुई थी जो बाद में टूट गयी पर मंदा और मकरन्द फिर भी परस्पर चाहते हैं, मकरन्द दद्दा के पुत्र विक्रमसिंह दरोगा का पुत्र है), रतन यादव, अभिलाखसिंह, जगेसर काका (सुगना के पिता) कोयलेवाले महाराज (पूर्वजीवन में पारीछा के प्रधान टीकमसिंह), द्वारिका कक्का, प्रधान कक्का राजा साहब (प्रदेश के विधायक) आदि स्त्री-पुरुष पात्रों के साथ ठकुराइन, अहल्या राऊतिन, लीला राऊतिन, गनेसी दद्दा पप्पू, डा.इन्द्रनील, भाईजी, भृगुदेव, दरोगा दीवान जैसे कई-कई पात्रों का संसार हमें प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है। किन्तु ध्यान रहे ये सब औपन्यासिक पात्र हैं। इस तरह के ही लोगों के संपर्क में मैत्रेयी रही है। उनके नाम अलग हो सकते हैं। चीमनसिंह यादव के यहाँ तो मैत्रेयी पली-बड़ी है। मेवाराम मैत्रेयी के दादाजी रहे हैं जिनका चरित्र भी बड़ा उदार रहा है। चीमनसिंह यादव के बेटे मैत्रेयी को अपनी बहन मानते रहे हैं। तो "इदन्नमम" के पात्र कई-कई प्रकार के लोगों के संयोजन के निर्मित हुए है। कई पात्रों पर कई-कई लोगों की छायाएं मिल सकती हैं।

मन्दा का जो संघर्ष, उसमें जो जीवट और जूझारुपन है, जीवनमूल्यों का आग्रह है, उसे देखते हुए लगता है की कहीं तो उसमें मैत्रेयी आ गई है, कहीं कस्तूरी आ गई है। खेरापतिन दादी और उनके लोकगीत तो यत्र-तत्र सर्वत्र मिलेंगे। बहू का जो चरित्र है उसके कुछ रेशे तो कस्तूरी के मिलेंगे, पर कुछ रेशे कई ग्रामीण स्त्रियों के भी हो सकते हैं। पंचमसिंह, मोदी, चीफ जैसे जो उदारमना बुजुर्ग हैं उनके रग-रेशे तो चीमनसिंह यादव, मेंवाराम, नम्बरदार, पटवारी साहब जैसे लोगों से मेल खाते हैं। रतन यादव, अभिलाखसिंह, जगेसर जैसे माफिया और गुण्डे भी गावोमें खूब मिल जाते हैं। कस्तूरी और मैत्रेयी दोनों ने अनुभव किया है कि ग्रामीण राजनीति अब ऐसे गुण्डा तत्वों के हाथों में जा रही है। बऊ और मन्दा की जमीन अभिलाखसिंह और गोविंदसिंह जैसे लोग छल-छदम और धोखे से हड़प लेते हैं, तो इस तरह के किस्से भी गांव-खेड़ों में होते हैं। "कस्तूरी कुण्डल बसै" में तथा "गुड़िया भीतर गुड़िया" में यह प्रंसग आया है कि स्वयं कस्तूरी यदि चोक्कस न रहती

और कस्तूरी की मृत्यु के समय यदि मैत्रेयी भावुकता में आकर घर बैठ जाती तो उनकी जमीन भी मामा हेतराम या उनके लड़के हड़प जाते । तो ये सारे जमीनी अनुभव भी यहाँ काम आए हैं ।

हमने "कस्तूरी कुण्डल बसै" तथा "गुड़िया भीतर गुड़िया" से क्रमशः और 30 विचार-सूत्र निकाले हैं जिनसे कस्तूरी और मैत्रेयी उभय के प्रेम, विवाह, रिश्ते, शिक्षा, स्त्री की पहचान, उसकी अस्मिता, स्त्री-विमर्श, रुढ़ि, परंपरा आदि विषयों पर विचार और चिंतन उपलब्ध होते हैं और उनसे ही उनकी विचारपरा निर्मित हुई है । "इदन्नमम" के पात्रों के रचाव में उसकी भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है ।

मंदा के चरित्र के निर्माण में, जमीन छीन जाने पर कथा-वाचन करके जीवन-निर्वाह करना आदि में मैत्रेयी की वह शिक्षा काम आयी है जो उन्होंने गुरुकुल में हासिल की थी । गुरुकुल की शिक्षा के बाद कालेज-शिक्षा में भी मैत्रेयीजी ने संस्कृत लिया था और उसमें संस्कृत एसोशिएशन की सेक्रेटरी भी रही थी ।[100] अतः मन्दा की जो पृष्ठभूमि है, शिक्षा विषयक, उसमें मैत्रेयी की शिक्षा का दायित्व भी है ।

यह भी एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जो व्यक्ति डरपोक भीरु व कमजोर होता है, यदि वह साहित्य के क्षेत्र में जाता है, तो जोरदार चरित्रों का निर्माण करता है और उसके द्वारा वह अपनी आकांक्षाओं की क्षति-पूर्ति करता है । मन्दा की निर्भीकता, उसका लौह-संकल्पिनी होना । आदि में कहीं न कहीं मैत्रेयी की भीतरी कमजोरी और भीरुता भी कारणभूत है क्योंकि "इदन्नमम" के प्रकाशन के पूर्व की मैत्रेयी कुछ ऐसी ही रही हैं । आल्फ्रेड हिचकोक बहुत ही डरपोक थे, पर उनकी फिल्में भयंकर रुप से डरावनी होती थीं ।

सगुना की जो कहानी है उसके निर्माण में शकुन की त्रासदी है,[101] जिसे हम पहले बता चुके हैं । कुसुमा भाभी और दाऊजी की जो प्रेमकहानी है उसके पीछे मैत्रेयी की यही सोच है कि यदि पुरुष अपने पति-धर्म का निर्वाह नहीं करता है तो स्त्री भी उसके लिए बाध्य नहीं है । कुसुमा पंचमसिंह दददा के भाई गोविन्दसिंह के सुपुत्र यशपाल की पत्नी है, पर धन-संपत्ति की लालच में दूसरी पत्नी ले आता है और कुसुमा भाभी की घोर उपेक्षा करता है । बऊ और मन्दा के साथ गांव-गांव डोलते हुए कुसुमा भाभी और दाऊजी, पंचमसिंह दददा के छोटे भाई अमरसिंह की आत्माएं ही नहीं शरीर भी मिलते हैं और जिसके

फलस्वरुप कुसुमा भाभी को गर्भ भी रहता है तब दद्दा ही कुसुमा भाभी के साथ न्याय करते हैं ।[102]

मन्दा की मां प्रेम जब विधवा हो जाती है, जब मन्दा के पिता महेन्द्रप्रतापसिंह की हत्या हो जाती है, तब वह प्रेम रतन यादव के साथ भाग जाती है। यहाँ बऊ मन्दा की दादी और प्रेम की सास प्रेम को वेश्या, कुल्टा, बेड़िनी जैसी गालियां निरंतर सुनाती हैं और वह प्रेम को माफ नहीं कर पाती। इसका भी मनोवैज्ञानिक कारण है। बऊ स्वयं कम उम्र में विधवा हुई थीं, अतः जो विधवा दूसरे से विवाह कर लेती है, उससे वह घृणा करती है। उसके पीछे दमित वासनाजन्य "सैडिस्ट" ग्रंथि ही जिम्मेदार है। बऊ का यह जो चरित्र है वह कस्तूरी के जीवन से भी मेल खाता है। कस्तूरी भी कम उम्र में विधवा हो गयी थी।

कुसुमा भाभी, प्रेम, मंदा आदि के चरित्र में कई ऐसे रेशे हैं जिनका निर्माण या तो मैत्रेयी से हुआ है या उन महिलाओं से हुआ है जो उसके अनुभवार्जन काल में उसे मिली हैं। सती, यौन-शुचिता, पवित्रता, नैतिकता प्रभृति विषयों में जो विचार-धारा है उसमें कहीं कस्तूरी की सोच है तो कहीं मैत्रेयी की।

शैशवावस्था में मंदा पर उसके दूर के रिश्ते के मामा द्वारा जो बलात्कार होता है उसे भी कुसुमा भाभी बहुत ज्यादा गंभीरता से लेने से मना कर देती है - "इतनी बड़ी जिन्दगानी में अच्छा-बुरा घट जाता है बिटिया, उसके कारन मन में गांठ लगाने से क्या फायदा ? जो तुमने किया ही नहीं, उसके लिए अपने को दोसी क्यों मानना ?"[103] यहाँ कुसुमा भाभी के जो विचार है वे बलात्कार की इस घटना को एक नया आयाम देते हैं। कस्तूरी और मैत्रेयी दोनों के विचार यहाँ मिलते हैं। कस्तूरी भी ऐसी बातों को ज्यादा तुल नहीं देती थी। मां की नौकरी के कारण पढ़ाई हेतु मैत्रेयी को अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग किस्म के लोगों के साथ रहना पड़ा था और उसके साथ भी ऐसी छोटी-मोटी घटनाएं हुई थीं, अतः मन्दा थोड़े समय में ही नोर्मल हो जाती है और जिन्दगी में निर्ग्रंथित स्थिति में बड़े-बड़े कामों को अंजाम देती है।

"इदन्नमम" तीन पीढ़ियों की कथा है। मैत्रेयी के पास भी तीन पीढ़ियों का अनुभव है। मैत्रेयी में जो ठोसपन है, कठोरता और निर्ममता है, वह उसे विरासत में कस्तूरी से मिली है। गीत उसे खेरापतिन दादी, कलावती चाची तथा ग्रामीण स्त्रियों के सहवास से मिले है। "इदन्नमम" उनकी "नेहबंध"

कहानी का विकास है जिसमें उन्होंने अपनी अनुभव-यात्रा से बहुत-कुछ जोड़ा है। अनुभव के साथ उनका व्युत्पत्ति-ज्ञान भी काफी समृद्ध है। उन्हें अपनी साहित्यिक परंपरा का ज्ञान है। अनेक देशी-विदेशी साहित्यकारों का अध्ययन उन्होंने किया है। रेणू की "कहन-रीति" को अंगीकृत किया है और इन सबसे इस महान मील-स्तम्भनुमा औपन्यासिक कृति का निर्माण हुआ है।

(4) चाक:

मैत्रेयी पुष्पा का "चाक" उपन्यास सचमुच में चित्त को चाक कर देने वाला उपन्यास है। उसका प्रकाशन सन् 1997 में हुआ था, अतः असंदिग्धतया उसमें निरुपित घटनाएं सन् 1996 तक की हो सकती है। उपेन्द्रनाथ अश्क़ के प्रथम उपन्यास "सितारों के खेल" के संदर्भ में "हंस" (बनारस) ने लिखा था - "विश्व-कवि वाल्ट ह्विटमैन की दो अमर पंक्तियां "Comrade this his no book, who touches this touches the man",[104] ये पंक्तियां तो "सितारों के खेल" पर उद्धृत की गयी है; परंतु सच पूछा जाय तो इन पंक्तियों को "चाक" के संदर्भ में भी उद्धृत करने का मन हो जाता है। मनुष्य क्या है, उसका मन क्या है, उसकी अतल गहराइयों में क्या कुछ छिपा हुआ हो सकता है, वह क्या हमेशा एक-सा रहता है, या कभी ऊंचाइयों पर विहरता है, तो कभी खाइयों में जा गिरता है। उपन्यास के दो प्रमुख पात्र-सारंग और रंजीत के संदर्भ में हम ऐसा सोच सकते है। सारंग तो उपन्यास की नायिका है ही, रंजीत को नायक कह भी सकते हैं और नहीं भी। सारंग का पति होने के नाते उसे उपन्यास का नायक कहा जा सकता है, परंतु लगभग एक तिहाई उपन्यास की समाप्ति के बाद पृ.123 से उपन्यास में मास्टर श्रीधर प्रजापति का आगमन होता है और शेष उपन्यास के दो तिहाई हिस्से पर उसका प्रभाव रहता है। उसमें और सारंग में प्रेमी-प्रेमिका का रिश्ता बनता है। सारंग और रंजीत के मन मानो "चाक" पर घूमते हैं, श्रीधर स्थिर है। सारंग अपने पति रंजीत को बहुत चाहती है, परंतु झूठी महत्वाकांक्षा के चलते वह निरंतर नीचे गिरता जाता है और फलतः सारंग की आंखों से भी गिर जाता है।

उपन्यास की कथा और पात्रों के संदर्भ में पूर्ववर्ती अध्याय में विस्तार से चर्चा हो चुकी है। अतः यहाँ मैत्रेयी की आत्मकथाओं के संदर्भ में उपन्यास पर कुछ चर्चा होगी। "पहल" के संपादक ज्ञानरंजन ने प्रस्तुत उपन्यास में लोकजीवन की महक को महसूसते हुए लिखा है - "जिस लोकजीवन से हमारी रचनात्मक धारा काफी पहले विमुख हो चुकी थी उसकी अनेक परतें मैत्रेयी

पुष्पा ने खोल दी हैं । मैत्रेयी पुष्पा को उनकी मामूली पर जबरदस्त स्त्रियों के कारण याद किया जाएगा ।"[105]

जिन स्त्रियों का उल्लेख ऊपर ज्ञानरंजन कर रहे हैं वे स्त्रियाँ है - खेरापतिन दादी, लौंगसिरी बीबी, कलावती चाची, हुकमकौर और ढ़ेर सारी ग्रामीण औरतें जिनका जिक्र मैत्रेयी की दोनों आत्मकथाओं में अनेक स्थानों पर हो चुका है । खेरापतिन दादी के पास ढ़ेर सारे लोकगीत, कलारिन के गीत, शादी-ब्याह के गीत, खेल के गीत, गाली गीत और लोककथाओं का पिटारा है । कलावती चाची और लौंगसिरी बीबी भी इसमें कहीं पीछे नहीं है । मैत्रेयी की माताजी कस्तूरी चाहती थीं कि मैत्रेयी अपना ज्यादा से ज्यादा ध्यान पढ़ने में, विद्या हासिल करने में लगावे और इसलिए वह इन गंवारिन औरतों के पास ज्यादा न बैठे, लेकिन मैत्रेयी का ध्यान पढ़ने में तो कम रहता था इनके गीतों और लोककथाओं में ज्यादा रमता था । और यही सब पूंजी है मैत्रेयी की, उनके उपन्यासों की शक्ति और ताकत ।

इस खेरापतिन दादी के बारें में मैत्रेयी लिखती हैं - "हमारे गांव की खेरापतिन दादी का तेवर अपना ही है, वह सिर्फ करुणा की ही नहीं, प्रतिरोधी स्वर भरे गीतों की लोक गायिका है । मुझे याद आए वे गीत, जिनके मर्म चले आ रहे रस्मों-रिवाजों में नहीं, अब बदलाव के तेवरों में खुलने लगे तो मन के मौसम बदल गए । गंवई शब्द-यात्रा में अनजाने पहलू सामने आए ।..... मुझे क्या मालूम कि हमारी खेरापतिन दादी में ऐसी भावात्मक और कलात्मक क्षमता है कि सादा ग्रामीण बोली-बानी की लयबद्ध पंक्तियां बड़े से बड़े अवसाद का संसार रच देती हैं तो छोटे-छोटे वाक्यों से बड़े-बड़े अर्थ खोल देती हैं । क्या मैं इन गीत कथाओं के साथ अपनी पुस्तक में न्याय कर पाऊंगी ?"[106]

"गुड़िया भीतर गुड़िया" में ही मैत्रेयीजी ने बताया है कि किस प्रकार खेरापतिन दादी परंपरागत गीतों को नये जमाने के अनुरुप ढाल लेती थीं, क्योंकि उनका मानना था कि गीतों को यदि नया नहीं किया गया तो उनमें फ्फूंद लग जाएगी । इन्होंने त्रेतायुग की रामकहानी को नये सन्दर्भो में रखा । बाबा तुलसीदास की भी परवाह नहीं की । उन्होंने सीता-कथा से जोड़कर एक नया ढोला रचा -

"सीता ठाड़ी जनक दरबार, सुरिज जल दै रहीऽऽ ई...
सीता मांगनो होच सोई मांगि तपस्या पूरन है गयीऽऽ ई...
मैने मांगि कौसिल्या-सी सास, सुसर राजा दशरथ से

मैने वार मांगे सिरीराम, ननद छोटी भगिनी सी...

मैने मांग्यो अजुध्या को राज, गंगाजी मांगीनहाइबेकूं ।"107

खेरापतिन दादी की सीता कौशल्या-सी सास, दशरथ से ससुर, राम से पति, छोटी भगिनी-सी ननद मांगती है । यह सब तो परंपरागत है, पर वहीं उसमें एक बड़ा-सा झोल डाल देती है - खेरापतिन दादी की सीता सिर्फ वहीं नहीं रुक जाती । उसे तो अयोध्या का राज और नहाने -विहार करने समूची गंगा भी चाहिए । अभिप्राय यह कि स्त्री को भी संपत्ति में अधिकार मिलना चाहिए । जमीन-जायदाद में उसका हक होना चाहिए और गंगा-स्नान स्वतंत्रता का प्रतीक है । जिस मैत्रेयी ने इस प्रकार की खेरापतिन दादी को बचपन से अपनी सांसो में पिरोया हो वही रच सकती है सारंगनैनी को और वही लिख सकती है सारंग-श्रीधर की संवनन-कथा और मिलनोत्सव को ।

और यही खेरापतिन दादी रामकथा को भी नया विमर्श देती है । वह गांव की स्त्रियों को कहती है : "छोरियो", जलवायु और आकास (यहाँ कोई बर्तनी-दोष न निकाले, दादी लोकबोली में कहती है अतः यहाँ "आकाश" आकास हो जाता है और "दोष" दोस) के संग धरती की अभिलाषा रखने वाली औरत किसीकी मोहताज नहीं हो सकती ।..... छोरियो, इतना सब था सीता के पास तभी तो लछमन रेखा लांघ गयी । रावण आया, संग चली गई । सोने की लंका देखने की लालसा कौन-सी बैयर को नहीं होती ? बैयर तो सोने-चांदी के कील-कांटे से ही बहलाई गई है ।..... और सीता ने रावण की तसवीर बनाकर सास-ननद को दिखा दी कि अपने भइया को दिखा दे । अपने पति के दुश्मन रावण से ऐसी जान-पहचान तो लछमन रेखा लांघने वाली ही कर पाती है, क्योंकि वह प्रेम-प्रीति पर भरोसा रखती है, मार-काट पर नहीं जैसा कि पुरुष रखता है । (और दादी, सीता की अगिन परीक्षा ?) बेटी, सांच को अगिन में न तपाया जाए तो झूठ जिन्दा कैसे रहे ? बस, यही अगिन परीच्छा थी । नहीं तो आग की लपटों में बैठकर कोई जिन्दा बचा है ? हम तो यह जानते हैं कि या तो वह आग नहीं थी या फिर हाड़मांस की सीता नहीं थी । वैसे भी रामजी को सोने की सीता बनवाकर रखने की लत थी । अपनी महिमा और मर्दानगी की खातिर सोने की सीता आग में उतार दी हो और सोने की काया कुन्दन हो गई हो ।..... सांची बात तो यह है कि खिसियाकर रामजी ने सीता की अजुध्या छीन ली । गंगाजी हथिया लीं । पत्नी को देश निकाला दे दिया । लो, इसी बात पर रामजी से लवकुश लड़े । नाइंसाफी करने वाला उनका बाप था भी या नहीं

? सीता ने ऐसे पति का मुंह नहीं देखना चाहा । भूमि समाधि लेनी पड़ी । लो देख लो कि लवकुश ने रामजी को जलसमाधि दे दी । तुम बेटों को अपना अंस नहीं मान पाए तो बेटा तुम्हें बाप कैसे मानें ?..... वाह री, खेरापतिन दादी..... तुम औरत की कितनी-कितनी भूमिकाओं को बदलने की गुनहगार..... गांव के चरनसिंह बौहरे तुम्हारी पुरोहिताई छुड़वाने के लिए पंचायत करवा रहे थे तो ताज्जुब किस बात का ?"[108]

ऐसी खेरापतिन दादी की चेली मैत्रेयी अपनी मानस-संतान सारंग द्वारा "लछमन-रेखा" का उल्लंघन करवाती है, तो उसमें क्या ताज्जुब ?

और कलावती चाची ? अपनी बहन रेशम के हत्यारे डोरिया की पहलवानी को धूल चटाने के लिए सारंग अपने दूर के रिश्ते के जीजा कैलाससिंह ताड़फड़ेवाले को आमंत्रित करती है । पर मनोवैज्ञानिक दृष्टया नपुंसक हो गए ताड़फड़ेवाले में जब तक पुंसत्व लौट न आवे तब तक वह पहलवानी की लड़ाई कैसे जीत सकते है । अतः कैलाससिंह में पुंसत्व का प्राण फूंकने का काम कलावती चाची करती है और पुंसत्व लौट आने पर कैलाससिंह डोरिया को हरा देते है तब सारंग कलावती चाची का आभार मानने जाती है । अब सुनिये कलावती चाची की जबान में – "सारंग, वे लल्लू बड़ी देर में निरदंद भए । पर जब निरदंद हो गए तो समझ ले कि मेरी आंखो के अगारी पूरे पुरिख होकर ठाड़े हो गए । मइया इतनी खुस तो मै तब भी नहीं हुई थी, जब पहली बेर रिसाल के दादा ।... वे पुरिख और में लुगाई... मैंने उन लल्लू को छाती से चिपकाकर, हार और जीत आनंद में डूबो लिया । रस ही रस फिर तो ।"[109]

इस कलावती चाची का उल्लेख भी दोनों आत्मकथाओं में मिलता है । चरनसिंह बौहरे को खेरापतिन दादी की सेनापति कलावती चाची सुना देती है - "छिनट्टा तू नहीं बदला तो हम भी नहीं बदलेंगे क्या ?"[110] गांवों में खेल के गीत, गाली गीत में सबको परास्त करनेवाली कलावती चाची ही कह सकती है – "चल लुच्ची । हम जाटिनी तो जेब में बछिया धरे फिरती है । मन आया ताके पहर लिए । तेरी-मेरी खातिर क्या ? अए तो हम्बै । क्या पल्लौ (परलय) हो गई ?"[111] सारंग जब यह कहती है कि मेरी खातिर चाची तुमने यह सब किया ? सब उसके उत्तर में मुंहफट कलावती चाची उसे उपर्युक्त बात सुनाती है । शहराती लेखक और लेखिकाओं को स्त्रियों की ये दुनिया अज़नबी और विचित्र

लगे, पर जो गांव में रहे है, गांव की जिन्दगी को जिन्होंने बहुत करीब से देखा है उनके लिए स्त्रियों का यह आचरण सहज और स्वाभाविक रहेगा। असल में अनपढ़ और अशिक्षित-सी लगने वाली ये औरतें बड़ी तेज़-तर्रार होती हैं और सेक्स के मामले में भी वे खुली और "निरदंद" (निर्द्वन्द्व) होती है। इसी लिए प्रो.मैनेजर पांडे, प्रो.चन्द्रकान्त बांदीवड़ेकर, मनोहरश्याम जोशी, डा.वीरेन्द्र यादव, डा.राजेन्द्र यादव, डा.परमानंद श्रीवास्तव, डा.रोहिणी अग्रवाल जैसो को मैत्रेयी का ये संसार वास्तविक और यथार्थ लगता है; क्योंकि उसकी स्त्रियां मनुष्य है, देवी नहीं, सती-साध्वी नहीं, हाड़-मांस की बनी है, "देह धरी है तो देह का हक्क भी होता है।"[112] ऐसा कहने वाली और समझने वाली; क्योंकि मैत्रेयी प्रणबद्ध तरीके से कहती है – "मैं लिखूंगी, सिकुर्रा की स्त्रियां न मीरा हैं न महादेवी, वे हैं चन्दना और कलारिन गीत-कथाओं की स्त्रियां।"[113]

मैत्रेयी कहती हैं – "खेरापतिन दादी ने मेरे भीतर ये कथाएं उतार दी और कहा – ये कथा-कहानी नहीं हैं, गांव-भीतर, घर-भीतर के जंगलो में खुलनेवाली वे सच्चाइयां है, जिन्हें बैयर ही जानती हैं, क्योंकि वे उनके तन-मन और मांस खून से रची-बसी हैं। तू इन्हें कैसे बदलेगी ?"[114] मैत्रेयी का यह सवाल भी वाजिब है कि "हम जिस तरह जीते हुए दिखते हैं, ऐसे ही जीते भी हैं क्या ?[115] उत्तर होगा नहीं। हमारा भीतर-बाहर एक-सा नहीं है और कोई लेखिका यदि जीवन को उसी रुप में रखे तो कहर बरपा हो जाती है। इज्जतवालों की इज्जत चली जाती है। लेखिका यथार्थ ही कहती है कि "गांव में मेरी मां के दुश्मन सक्रिय हो जाएंगे, हर सच्चाई को झूठी साबित करने में लग जाएंगे ताकि मेरी लिखावट झूठी साबित हो और उन सबकी इज्जत बनी रहे, जो सरेआम औरतों की इज्जत उतारते हैं।"[116]

"इदन्नमम" की भांति "चाक" में भी मैत्रेयी ने उन पात्रों को उठाया है जिनसे वह परिचित हैं, कहीं कुछ नाम बदल दिए गए हैं। कलावती चाची का बेटा तो रिसाल ही है। "चाक" के थानसिंह सचमुच के मास्टर लालसिंह है और "चाक" के प्रधान फतेसिंह का असली नाम कुन्दनसिंह हैं। भंवर, गजाधर बाबा और श्रीधर वही हैं। लेखिका श्रीधर से पूछती है कि नाम बदलना होगा तुम्हारा, तो उसका उत्तर था कि नाम बदलने से चरित्र नहीं बदल जाते।[117]

जैसे "इदन्नमम" कहानी "नेहबंध" का विस्तार है, ठीक उसी तरह "चाक" मैत्रेयी की कहानी "फैसला" का विस्तार है । कहानी की नायिका बसुमती है और नायक वा खलनायक रनवीर है । यहाँ वे क्रमशः सारंग और रंजीत बनकर आए हैं । इस प्रकार कहानी को औपन्यासिक रुप देना यह प्रवृत्ति मटियानीजी में भी पायी जाती है, पर इस कला में मैत्रेयी का हाथ अधिक सधा हुआ हो ऐसा लगता है । "कस्तूरी कुण्डल बसै" तथा "गुड़िया भीतर गुड़िया" (पूर्वदीप्ति द्वारा) में निर्दिष्ट किया गया है कि मैत्रेयी की प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा गुरुकुल में हुई है । यहाँ "इदन्नमम" तथा "चाक" की नायिकाएं क्रमशः मन्दा और सारंग भी गुरुकुल की छात्राएं रही है ।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

"इदन्नमम" में मैत्रेयी दावा करती है कि यह मेरा नहीं है । "चाक" में भी नायिका सारंग, वास्तविक जीवन की सारंगनैनी है, परंतु लेखिका ने सारंग का चरित्र-चित्रण इस खूबी से किया है कि डाक्टर साहब (मैत्रेयी के पति) की भांति कइयों को लग सकता है कि कहीं यह मैत्रेयीजी तो नहीं ? "चाक" पढ़ने के बाद डाक्टर साहब कहते भी हैं – "बात यह है मेरी जान, किताब की सारंग, सारंग नहीं लगती, मुझे वह तुम लगती हो, एकदम तुम ।"[119]

इसके उत्तर में मैत्रेयी कहती है - "मैं सारंग हूं या नहीं हूं, तुमने खुदको रंजीत (सारंग के पति) के रुप में देख लिया है । एकनिष्ठ प्रेमी पति । विकास के सपने देखने वाला और उन्हीं ग्रामीणों के हाथों तबाह होनेवाला, जिनकी उन्नति के लिए पढ़-लिखकर गांव में ही रह गया ।"[120] इसके उत्तर में डाक्टर साहब कहते है - "हां, इसमें क्या शक है ? मेरी तरह ही श्रीधर को परसकर खिलानेवाला । तुम्हें मास्टर के नजदीक जाने से रोकने वाला । औरत के लिए खड़े खतरों से डरने वाला । तुम्हें ही पछाड़ने पर मजबूर होनेवाला... लिखा तो तुमने बहुत होशियारी से है डार्लिंग, पर हम भी तुम्हारी रंगत पर नजर रखनेवाले है । माफ करना मेरी जान, बहुत कुछ ज्यादा सावधानी बरतने में हो जाता है ।"[121]

"इदन्नमम" के प्रकाशन के बाद जिन परिस्थितियों का निर्माण हुआ था उनसे मैत्रेयी जिस चिमनसिंह यादव के परिवार में बेटी की तरह रही उसे लेकर लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे । जुझारपुरा और खिल्ली में तलवारें तन गयी थीं और बिना पुलिस संरक्षण के मैत्रेयी का भी वहाँ जाना मुश्किल हो गया था । इन सबका विस्तृत वर्णन "गुड़िया भीतर गुड़िया" में किया गया है, तो

"चाक" के प्रकाशन के बाद लोग मैत्रेयी के चरित्र पर भी छींटाकशी कर रहे हैं, यहाँ तक कि डाक्टर साहब ने भी कहा था कि "चाक" में निरुपित सारंग मैत्रेयी ही है। वस्तुतः मनोवैज्ञानिक दृष्टया देखा जाए तो लेखक वा कलाकार अपनी अधूरी इच्छा की पूर्ति अपने रचे पात्रों में करते हैं। कर्ता को भी अपना अधूरापन खलता है, अन्यथा यह क्यों कहा जाता कि - "एको हम बहु स्याम" । स्वयं मैत्रेयीजी ने इसका इकरार बड़े सांकेतिक ढंग से कर भी दिया है - "सारंग, तुम मेरा पीछा छोड़ो क्योंकि कलावादियों के किले में सेंध लगा नहीं सकती और उनके द्वार-दरवाजे मेरे लिए बन्द हैं। मेरी इमेज तुम जैसी औरतों की कथाओं ने मैली कर डाली।"[122] जहाँ "इदन्नमम" के कारण मैत्रेयी की सामाजिक जिन्दगी में दरारें आयीं, वहाँ "चाक" के कारण उनका वैयक्तिक जीवन दरकने लगा। डाक्टर साहब रुठे-रुठे और रुखे-रुखे से रहने लगे तो नवयुवा बेटी मोहिता का दाम्पत्य-जीवन भी खतरे में पड़ गया। "यह उपन्यास था और जिन्दगी मेरे आगे जलने लगी। सचमुच में अपनी पूरी ताकत लगाकर भी अपनी नवयुवा बेटी का दाम्पत्य नहीं बचा पायी।"[123]

मैत्रेयी के लेखन से नाराज लेखिकाओं, "गोडमधर" तथा अन्यों को यह सोचना चाहिए कि क्या लेखन में वे इस तरह के खतरों को उठाने के लिए तैयार हैं ?

(5) <u>झूलानट :</u>

दो बृहदकाय उपन्यासों के बाद यह एक लघु उपन्यास पर "नावक के तीर-सा" जो देखने में छोटा लगे पर गंभीर घाव करने वाला है। इसमें बुंदेलखण्ड की एक और बलूकी-बलवत्तर नारी शीलो को लेकर मैत्रेयी आयी हैं। मंदारुपी "चाक" से उतरी ये नारियां शुरु-शुरु में तो बड़ी कमजोर लगती हैं, पर पुरुष-सत्ता के बाणों से जब आहत होती हैं तो शेरनियों-सी दहाड़ने लगती हैं। सबल-सशक्त नारी पात्रों को देकर मैत्रेयी कदाचित् यह प्रमाणित करना चाहती हैं कि स्त्रियों को अपने हक की लड़ाई खुद लड़नी होगी। विशुद्ध नारीवादियों की तरह मैत्रेयी स्त्रियों को पुरुष के विरोध में नहीं खड़ी कर रहीं। उनका विरोध पुरुषों से नहीं है, बल्कि उनका साथ-सहयोग तो वह भी चाहती हैं। मैत्रेयी की लड़ाई पुरुष-सत्ता, पितृसत्ताक संस्थानों और फकत और फकत उनके हितों में बनाए विधि-विधानों और कायदों से है। स्त्री और पुरुष संसाररुपी रथ के दो पहिये हैं, फिर एक पहिया कमजोर कैसे हो गया ? अबला कैसे हो गया ? हम बातें तो बड़ी-बड़ी करते हैं, लेकिन हमारा व्यवहार ?

हमारा आचरण उसके अनुकूल क्यों नहीं होता ? "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते" कहनेवालें की यह कैसी नारी-पूजा है ? जब तक नारी उनके कहे पर चले, उनके इशारों पर कठपुतली की तरह नाचती रहे, उनके बनाए विधि-विधानों को मानती रहे तब तक तो वह देवी और जहाँ उस लीक से थोड़ी हटी कि सीधे आ गयी वेश्या, कुल्टा, बेड़िनी की कैटेगरी में। "झूलानट" की शीलो भी मैत्रेयी की तरह शुरुआती दौर में कमजोर, पर बाद में पति-पुरुष को भी भारी पड़ने लगती है। इतनी भारी कि उपन्यास के एक समीक्षक डा.खगेन्द्र ठाकुर ने तो शीलो के पति सुमेर को किसी शुमार में ही नहीं लिया है, यथा - "इस प्रकार तीन मुख्य पात्र मिलकर एक त्रिभुज बनाते हैं, ये पात्र हैं - शीलो, बालकिशन और मां। निःसंदेह शीलोवाली भुजा सबसे बड़ी और सबसे अधिक दबंग है।"[124]

अपनी आत्मकथा के दूसरे खण्ड "गुड़िया भीतर गुड़िया" में मैत्रेयीने जितना "इदन्नमम", "चाक" और "अल्मा कबूतरी" की रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में लिखा है, उतना प्रस्तुत उपन्यास की रचना-प्रक्रिया पर नहीं लिखा है। केवल एक-दो स्थानों पर उसका जरा-तरा उल्लेख मिलता है। "चाक" के बाद जो पारिवारिक स्थितियां बनती है, उनके संदर्भ में मैत्रेयी कहती है – "प्रियतम, तुम्हारी दुनियाँ में सुख तो है, मगर घुटन उससे ज्यादा। सुविधा भी है, लेकिन सिकुड़े-संकरे दायरों के बन्धन..... सच, मेरे स्वभाव में परिवर्तन की बुरी लगन है, मैं तुम्हारे "विवाह लगन" के योग्य नहीं थी और न शायद मां बनने योग्य... अभी तो शुरुआत है, मोहिता का जीवन प्रभावित हुआ, आगे क्या होगा, जब शीलो, आभा और अल्मा आएंगी ? मुझसे वे छोड़ी न जाएंगी, पात्रों से बुरी तरह जुड़ी रहती हूं मै। ऐसी दीवानगी....."[125]

उपर्युक्त कथन में जो तीन स्त्री-पात्र हैं उनमें शीलो "झूलानट" की नायिका है, आभा "विजन" की और अल्मा "अल्मा कबूतरी" की। अभिप्राय यह कि "झूलानट" का यत्किंचित् उल्लेख उनकी आत्मकथा में उपलब्ध होते है। "यह तन जारों, मसि करों" ("गुड़िया भीतर गुड़िया" का एक अध्याय) में "अल्मा कबूतरी" की रचना-प्रक्रिया की बात है, पर प्रस्तुत उपन्यास का उल्लेख कम ही मिलता है।

उपन्यास की नायिका शीलो एक साधारण-सी लड़की है, न ज्यादा खूबसूरत, न ज्यादा बदसूरत। पर यौवन अपने आप में सौन्दर्य का एक अभिलक्षण माना जाता है। शीलो ज्यादा पढ़ी-लिखी भी नहीं है, बल्कि उसे

अनपढ़ ही कहना चाहिए। उसने न समाज-शास्त्र पढ़ा है, न मनोविज्ञान, पर ग्रामीण औरतों में जो सामान्य सूझ-बूझ होती है, वह गजब की होती है जिसके चलते वह पढ़े-लिखों को भी कई बार चारों खानों चित्त कर देती है। मैत्रेयी बुंदेलखण्ड के इन गावों को और वहाँ की "बैयर-बानियों को भली भांती जानती है, उनके साथ वह बहुत जल्दी बहिनापा स्थापित कर लेती हैं और उसके कारण ही उनको मन्दा, सारंग, शीलो, अल्मा जैसी औरतें मिल जाती हैं। प्रेमचंद कहते थे कि मैं अपने पात्र आलमारी की किताबों से नहीं उठाता हूं, जीवन के रंगमंच से उठाता हूं, ठीक यही बात मैत्रेयी, मटियानी और रेणु तथा नागार्जुन जैसे लेखकों पर लागू होती है। इस तरह शीलो भी मैत्रेयी की खोज है।

बकौल राजेन्द्र यादव के मुहावरेदार, जीवंत और खुरदरी लगनेवाली भाषा की "गंवई ऊर्जा" मैत्रेयी का ऐसा हथियार है जो उन्हें अपने समकालीनों में सबसे अलग और विशिष्ट बनाता है... वह उपन्यास की शिष्ट और प्राध्यापकीय मुख्यधारा की इकहरी परिभाषा को बदलने वाली निर्दमनीय कथाकार हैं। अपनी प्रामाणिकता में उनका हर चरित्र आत्मकथा होने का प्रभाव देता है और यही उनकी कला-संपन्नता है।..... "झूलानट" की शीलो हिन्दी उपन्यास के कुछ न भूले जा सकने वाले चरित्रों में से एक है।"[126] शीलो जैसी स्त्री को मैत्रेयी कैसे तलाश और तराश सकी उसका जवाब हमें उनकी आत्मकथाओं में विशेषतः "कस्तूरी कुण्डल बसै" में मिल सकता है क्योंकि कस्तूरी की दृष्टि से मैत्रेयी पढ़ रही थी, पर नहीं, मैत्रेयी गुन रही थी, अपनी अनुभव-पूंजी में इजाफा कर रही थी। इस प्रकार के चरित्र वही लेखिका उकेर सकती हैं जिसने उस प्रदेश की मिटटी से प्यार किया हो और जो वहाँ के धूल-धक्कड़ को मुहब्बत करती हो।

डा.गोपाल राय ने कहा है कि उपन्यास में ऐसा कोई "विज़न" नहीं है जो हमें "इदन्नमम" या "चाक" में मिलता है, परंतु मेरे नम्र अभिमत में शीलो ने सुमेरबाबू जैसे पढ़े-लिखे कानून को जाननेवाले सरकारी मुलाजिम को धूल चटाकर वह विजन दे दिया है कि पुरुष यदि एक स्त्री के रहते दूसरी के साथ रहता है तो स्त्री भी दूसरे पुरुष के साथ रह सकती है। शीलो ने सुमेर को उसके ही हथियारों से मात किया है। देवर बालकिशन के साथ रहकर वह अपनी शारीरिक जरुरतों को भी पूरा कर रही है और एक तरह से सुमेर बाबू की जमीन-जायदाद पर भी कब्जा कर लिया है। सुमेर बाबू सरकारी नौकरी में

है, अतः ज्यादा चू-चपड़ नहीं कर सकते, इस बात का शीलो ने भरपूर फायदा उठाया है। सचमुच ही वह "गाय की खाल में बाघिन" प्रमाणित हुई है।

(6) अल्मा कबूतरी :

"गुड़िया भीतर गुड़िया" में "अल्मा कबूतरी" उपन्यास के बीज-प्रसंग का आलेखन हुआ है : "फिर भी मैं श्रीराम सेण्टर गई। "गुड़िया" संस्था द्वारा आयोजित वेश्याओं और बेड़नियों के नृत्य और गीतों ने मुझे खींच लिया। बदनाम बस्तियों की बदकार औरतें, उनसे मिलने की गुनहगार मैं, पति के सामने नहीं पड़ी। पड़ती भी कैसे... कार्यक्रम से लौटी तो मन में सारंग और कलावती चाची, कदमबाई और अल्मा नाचती आई। ढोलक की ताल और पांवों में पेंजनियां।"[128]

बहुत पहले लगभग सन् 1858 में डा.रांगेय राघव ने राजस्थान की करनट जन-जाति को लेकर "कब तक पुकारुं" नामक उपन्यास लिखा था।[129] लगभग उसी प्रकार का प्रयास मैत्रेयीजी ने "अल्मा कबूतरी" को लेकर किया है जिसमें उन्होंने बुंदेलखण्ड के एक जरायम पेशा और अपराधी जन-जाति "कबूतरा" जाति के लोगों के यथार्थ जीवन को चित्रित किया है।

"अल्मा कबूतरी" की रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में आत्मकथा "गुड़िया भीतर गुड़िया" में एक समूचा अध्याय - "यह तन जारौं, मसि करौं" (पृ. 253-281) - दिया गया है जिसमें लेखिका ने सिलसिलेवार ब्यौरा दिया है कि किस प्रकार वह बुंदेलखण्ड के एक गांव - खिल्ली मड़ोरा - की कबूतरा बस्ती में जाती है, एक बार नहीं कई-कई बार, शुरु में अपने भाई युवराज (चिमनसिंह यादव के बेटे) और बुद्धसिंह के साथ, कभी मिट्ठू कक्का के साथ, किस प्रकार वह सोबरन (दद्दा चिमनसिंह यादव का बेटा जो कज्जा से कबूतरा बन गया था, यही "अल्मा कबूतरी" का मंसाराम है)[130] को ढूंढ पाती है, सोबरन के कारण इस कज्जिन औरत पर कबूतरा पुरुषों और स्त्रियों को विश्वास बैठता है, किस प्रकार कबूतरा औरतें अपनी बोली-बानी के अर्थ छिपाती हैं, चिमनसिंह यादव के प्रयत्न कबूतरा लोगों की स्थिति में सुधार लाने के जिसके कारण बहुत-से लोग उनका ही विरोध करने लग जाते है, भूरी और चिमनसिंह की बातें, राणा (भूरी का लड़का) का प्रसंग, कदमबाई से भेंट और अन्ततः उपन्यास की नायिका अल्मा से मिलना, कबूतराओं के बारे में हर तरह की जानकारी प्राप्त करने के प्रयत्न, छोटी बेटी सुजाता द्वारा डा.नवल को पसंद

करना, डाक्टर नवल का छोटी जाति का होना, डा.नवल के प्रखर व्यक्तित्व से मैत्रेयी के विश्वास का बढ़ना, जिसके कारण अपनी अधूरी खोज - कबूतराओं के बारे में - को पूरी करना, सन् 2000 के विश्व पुस्तक मेला के अवसर पर "अल्मा" का छपकर आना, राजकमल प्रकाशन के प्रबंध निदेशक अशोक माहेश्वरी की इच्छा की "अल्मा" का लोकार्पण महाश्वेतादेवी से हो, मैत्रेयी के लेखकीय रुझान की तुलना महाश्वेतादेवी से होना, महाश्वेतादेवी तथा अजीत कौर की बेबाक तरफदारी मैत्रेयी के प्रति, मैत्रेयी के विरोधी खेमें की लेखिकाओं की टिप्पणी पर अजीत कौर का सनसनाता जवाब, "अल्मा" को सार्क लिटरेरी एवार्ड का मिलना, "उचिल्या" के लेखक लक्ष्मण गायकवाड से भेंट जैसे अनेकानेक प्रसंगो का आलेखन इस अध्याय में हुआ है । अल्मा कबूतरी के पात्रों और उसके वातावरण को समझने के लिए इस अध्याय का पढ़ना मैं अत्यन्त आवश्यक समझती हूं । इसमें किन-किन भय-स्थानों से लेखिका को गुजरना पड़ा है उसका भी ब्यौरा मिलता है ।

"अल्मा कबूतरी" एक अलग प्रकार का उपन्यास है । यह बुंदेलखण्ड की एक जन-जाति - कबूतरा - के संघर्षपूर्ण कटु यथार्थ की कहानी है । जिस प्रकार "लोरेन्स आफ अरेबिया" के अभिनेता ने उस फिल्म में वास्तविक अभिनय देने के लिए साढ़े तीन साल तक अरबस्तान के रेगिस्तानों में जीवन बिताया था, ठीक उसी प्रकार इस उपन्यास के प्रणयन के लिए मैत्रेयीजी कई-कई साल, बरस-महीने "खिल्ली-मड़ोरा" की कबूतरा बस्ती में गयी हैं, इस जन-जाति से सम्बद्ध तमाम साहित्य को उन्होंने खंगाला है, अभिप्राय यह कि जेइम्स केरी उपन्यास के लिए जिस प्रकार की खोज या रीसर्च की बात करते है, उससे मैत्रेयी रुबरु हुई हैं[131] और उसके पश्चात अपने तमाम नोट्स, दस्तावेज, गवर्नमेण्ट गेजेट के आधार पर अपनी रचनात्मक ऊर्जा की आंच देकर इस उपन्यास का सृजन किया है । अतः इसे हम "मधु कांकरिया के उपन्यास "सलाम आखिरी" की भांति एक शोधमूलक उपन्यास कह सकते है । मधुजी ने भी कोलकत्ता की वेश्याओं पर सर्वे करते हुए सोना गाछी, बहु बाजार आदि कोलकत्ता के रेड लाईट ऐरिया की खाक छानते हुए उक्त उपन्यास की रचना की है ।[132]

"तत्सम" उपन्यास की लेखिका राजी सेठ से जब मैत्रेयी ने अपने इस उपन्यास की योजना के बारें में बताया तो उन्होंने उस पर ठण्डा पानी डालते हुए कहा - "तुम लोग स्थूल को रचना बनाना चाहते हो, असल ज्ञान होता है

सूक्ष्म में ।"[133] मैत्रेयी जी को कुछ निराशा होती है, पर वह अपनी लगन और धुन की पक्की है । वह अपने भाई युवराज, तो कभी बुद्धसिंह, तो अक्सर मिट्ठू कक्का के साथ उन जन्मजात अपराधियों की ओर बढ़ने लगी, क्योंकि हमारे समाज की स्त्रियों के लिए उनके पास जाने का चलन नहीं है ।[134]

राजी सेठ द्वारा निरुत्साहित करने के बाद मैत्रेयी सोचती हैं - "जो कुछ ये लोग समझ रहे हैं, मेरा मकसद उससे अलग ही है । मुझे न अपना साहस प्रदर्शित करना है, न दार्शनिक की तरह ज्ञान बघारना है । मैं सोच रही थी, यदि ऊँगली इस किताब पर उठे तो मुझे डरना नहीं चाहिए । मैं अपनी मातृभूमि को कथानक बनाकर लिख रही हूं, मगर मां की गोद में बैठकर कलम नहीं चला रही । फिर भी जो इसे देखकर परेशान होंगे, मुझे लेखन से रोक नहीं सकते । यों भी यह देश तस्लीमा का बांगलादेश नहीं, जहाँ धार्मिक और राजनीतिक विषयों पर लेखन मौत के फतवे या देश निकाले के मंजर से गुजरता है, अगर वह कठमुल्लाओं और सरकारी आकाओं के मन का नहीं ।"[135]

शैलेश मटियानी ने कहीं लिखा है कि साहित्यकार यदि शोषित, दलित, पीड़ित वर्ग का न हो तो भी इन लोगों की ओर से लिखना वह उसका वाल्मीकि-धर्म है । अन्याय और अत्याचार को देखकर भी जो आंखों आड़े कान करले, वह दूसरा कुछ भी हो सकता है, साहित्यकार या कलाकार नहीं ।[136] यहाँ मेरी स्मृति में डा.पारुकान्त देसाई के निम्नलिखित वाक्य सूत्र-वाक्यों की तरह गूंज रहे है -"उपन्यासकार अपने समय के सच को मानवीय मूल्यों के साथ रखता है । मनुष्य और केवल मनुष्य की पहचान उसका एक मात्र लक्ष्य होता है । नोबल पुरस्कार विजेता चैक कवि जारोस्लाव सेईफर्त के शब्दों को यहाँ अप्रासंगिक न माना जाए - "यदि सामान्य मनुष्य ऐसे समय में (ऐसे समय से यहाँ उनका अभिप्राय यह है कि जब मनुष्यों पर जुल्म ढाए जा रहे हों) मौन रहता है तो उसमें उसकी कोई योजना हो सकती है, किन्तु ऐसे समय में यदि लेखक मौन रहता है तो वह झूठ बोल रहा है ।"[137] सेईफर्त महोदय कहते हैं कि ऐसे समय में लेखक का मौन रहना भी झूठ बोलना है, एक मानवीय अपराध है ।

कभी अंग्रेज शासकों ने अपनी राजकीय सुविधा हेतु कंजर, सांसी, नट, मदारी, सपेरे, पारदी, हाबूड़े, बनजारे, बावरिय, कबूतरे - न जाने कितनी जन-जातियों के लोगों को असामाजिक, अपराधी, जन्मजात अपराधी करार

दिया था। आज़ादी के बाद पंडित जवाहरलाल नेहरु ने कानूनन तो उसे दूर किया, पर हमारे जड़ पुलिस विभाग में और कई सरकारी महकमों में आज भी उनको अपराधी माना जाता है, इसे एक बहुत बड़ी विडंबना ही कहना चाहिए कि छः करोड लोग, किसी छोटे-मोटे देश की आबादी जितने लोग, अपराधी जातियों की सूची में है और कानून होने के बावजूद उनको सभ्य जातियों (तथाकथित) और मुख्यधारा के लोगों के साथ स्थापित नहीं किया जा रहा है। सदियों से वे सभ्य समाज के हाशिये पर है, और आज भी है। मैत्रेयीजी ने यदि इनमें से एक जन-जाति-कबूतरा-के लोगों को लिया है तो वह शाबाशियों की हकदार है, न कि निन्दा-मलामत की। हिन्दी साहित्य के तथाकथित कलावादियों को दरकिनार करते हुए मैत्रेयी कहती है -"युवजनों का शुक्रिया, जिन्होंने मुझे स्थापित समीक्षकों की दादागीरी से छुड़ा लिया।[138]

उपन्यास की कथा और चरित्रों के संदर्भ में पूर्ववर्ती अध्याय में विस्तार से बताया है, यहाँ सिर्फ यह कहना है कि अधिकांश पात्रों के नाम यथार्थ जीवन से ही लिए गए है, केवल मंसाराम के नाम को बदला गया, केवल "सोबरन" के नाम को बदला गया है। चिमनसिंह यादव का बेटा सोबरन उपन्यास का मंसाराम है। लगभग आधे उपन्यास में मंसाराम और कदमबाई के संघर्ष व द्वन्द पूर्व जीवन को चित्रित किया गया है। उसके बाद अल्मा के चरित्र को समसामयिक राजनीति से जोड़ा गया है। डाकू बेटाराम वाली मूठभेड़ में अल्मा का पिता रामसिंह बलि का बकरा बनता है। अल्मा अनाथ और निराधार हो जाती है। राणा भी उसे छोड़कर चला गया है। पुलिसों द्वारा वह कई-कई बार बलात्कृत होती है, पर "शिकार" होने की दीन अवस्था अपराध-बोध से मुक्त होकर वह अपने समुदाय के लोगों के लिए कुछ कर गुजरना चाहती है। ऐसे में विपक्ष के नेता सूरजभान और समाज-कल्याण मंत्री श्रीराम शास्त्री का संग उसे प्राप्त होता है। देह के जरिये ही वह वहाँ तक पहुंचती है। इस प्रकार अपनी कमजोरी को ही वह अपनी ताकत बना लेती है। रामसिंह की बेटी होने का कारण वह कुछ पढ़ी-लिखी भी है। सूरजभान और शास्त्रीजी की सोहबत के कारण वह राजनीतिक तिकड़मों, दल-छदमों, राजनीति की ताकत आदि को जानने-समझने लगी है। अतः शास्त्रीजी की हत्या के बाद वह सीधे चुनावी दंगल में कूद पड़ती है और उपन्यास के अंत में वह विधान सभा का चुनाव जीत जाती है उसके संकेत भी मिलते हैं। पिछ़डी जनजाति की उम्मीदवार होने के नाते बहुत संभव है कि उसे शायद मंत्री-पद भी मिले। अल्मा की इस परिणति

को डा.गोपालराय ने लेखिका द्वारा नारीवाद को "लहराने" का प्रयास कहा है।[139] परंतु समसामयिक राजनीतिक समीकरणों को समझने वाले जान सकते है कि अल्मा की यह परिणति मुश्किल है पर असंभव तो कतई-कतई नहीं है। मायावती, उमा भारती, फूलनदेवी के उदाहरण हमारे सामने हैं। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में भी मैत्रेयी ने अल्मा के रुप में एक जबरदस्त जोरदार नारी-पात्र हिन्दी उपन्यास को दिया है।

खिल्ली-मड़ोरा की कबूतरा बस्ती में जाना, वहाँ की कबूतरा स्त्रियों को मिलना, उनको बोली-बानी को समझना कितना कठिन और जोखिमभरा है उसका विस्तृत ब्यौरा तो "यह तन जारौ मसि करो" वाले अध्याय में दिया गया है। केवल एक प्रसंग के जिक्र से ज्ञापित हो सकता है कि सम्भ्रान्त वर्ग की महिला के लिए यह कितना चुनौती भरा काम है। "कबूतर-संज्ञान" के अपने अभियान में वह एक बार कबूतरा युवक से मिलती है। उसने खूब शराब पी रखी थी। वह जिस अंदाज में मैत्रेयी से पेश आता है उसका वर्णन देखिए --

"री तू डर रही है?"

"हां।"

"धत् कज्जिन। "वह भद्दी सी हंसी हंसा।"

"लिख तू जल्दी लिख।"

"जो कुछ लिखाया, अंत में उसका अर्थ समझाया कुछ ऐसे अंदाज में कि मेरी घिग्घी बंध गई। अपनी बदरंग पेंट की जिप खोली और खड़ा हो गया। अपना लिंग पकड़कर बोला – "फ्लां बोल का मतलब यह..." मैंने आंखें बन्द कर लीं।

"री देख, नहीं तो ... और "कून्दा" जानती है? अपनी धोती ऊपर उठा। नंगी हो जा। दिखा कूंदा।"[140]

उसके बाद मैत्रेयी ने लिखा है "निर्वस्त्र शिव सामने खड़ा है, जिसके हाव-भावों में बीभत्स-सा आनंद छाया है। बिलकुल ऐसे, जैसे अपनी औरतों के अपमान का जहरीला दर्द इसकी रगरग में लहरा रहा हो। वह आगे बढ़ता है। मेरी चीस, होंठ चीरकर फट पड़ती है।

"है SSS , तू कज्जा हो गया रे ....."[141]

कबूतरा औरतों की भीड़ ने उसे सहारा देकर बिठा दिया था। कितनी ही देर बाद उन्हें होश आया। वहीं पर एक बीस वर्षीय कबूतरा युवती से मैत्रेयीजी

मिलती है, यथा - "अल्मा नाम की बीस वर्षीय लड़की में मै इस तरह गुंथ गई कि ..... उसके कन्धे पर सिर रखकर ..... एक जुट भेंट, अपने लिए थी या उसके लिए ? याकि अपनी सभ्यता के लिए, जिसमें नरसंहार और औरत की चीड़फाड़ का जरुरी तत्व शामिल हो गया है, यही सभ्यता सारे देश में फैल गई है ।[142]

उपर्युक्त विवरण में "है, तु कज्जा हो गया रे ....." यह जो वाक्य आया है, ध्यान देने योग्य है । यहाँ वे कबूतरा औरतें यह चाहती हैं कि यह कबूतरा युवक जो व्यवहार कर रहा था एक अनजान "कज्जा" स्त्री के साथ, वह कबूतरों को शोभा नहीं देता । ऐसा व्यवहार तो "कज्जा लोग" करते हैं कबूतरी स्त्रियों के साथ । कितना बड़ा व्यंग ? असभ्य और अपराधी कौन है ? गुनहगार कौन है ? ऐसे कई सवाल यहाँ उठते हैं । और अंत में जिस "नरसंहार" का उल्लेख किया है, उसका इशारा "गुजरात के सन् 2002 के नरसंहार" से प्रतीत होता है ।

संक्षेप में यही कथा है "अल्मा कबूतरी" के निर्माण की, सृजन की । उसके प्रकाशन पर राजेन्द्र यादव की यह टिप्पणी बड़ी सार्थक और सटीक है: "अल्मा कबूतरी" से पहले यदि ऐसा कुछ ध्यान में आता है तो कर्नल स्लीमैन की पुस्तक -- "अमीर अली ठग की आत्मस्वीकृतियां" । इसके बाद रांगेय राधव का नटों पर लिखा उपन्यास "कब तक पुकारुं?" भी इसमें शामिल किया जा सकता है । ये अलग तरह की, अलग समाजों की रचनात्मक अभिव्यक्तियां है । इन्हीं के संदर्भ में कहता हूं की उभरती हुई शक्तियों से जुड़ना क्या हमेशा संपादकीय पक्षपात या अपराध होता है? "अल्मा कबूतरी" को में मैत्रेयी के लेखन का महत्वपूर्ण मोड़ मानता हूं, क्योंकि उसने हिन्दी समीक्षकों को अजीब पसोपेश में डाल दिया है ।"[143]

अन्य उपन्यास :

"अल्मा कबूतरी" के पश्चात दूसरे पांच उपन्यास आते हैं । "अगनपाखी" (2001), "विजन" (2002), "कही ईसुरी फाग" (2004), "त्रियाहठ" (2005) और "गुनाह-बेगुनाह" (2011) । इनमें नये उपन्यास तीन है – विजन, कही ईसुरी फाग और गुनाह-बेगुनाह । "अगनपाखी" और "त्रियाहठ" क्रमशः उनकी उपन्यासिका "स्मृतिदंश" और लघु उपन्यास "बेतवा बहती रही" के पुनर्पाठ है । "कस्तूरी कुण्डल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया" उनकी आत्मकथाएं है जो

क्रमशः 2002 और 2008 में प्रकाशित हुई है । परंतु "गुड़िया भीतर गुड़िया" में सन् 2002-2003 तक की घटनाएं वर्णित है । उसके अंतिम अध्याय "हम न मरहिं संसार" में राजेन्द्र यादव के "अमृत महोत्सव" (75 वां जन्मदिवस) का उल्लेख हुआ है । अतः इस आत्मकथा में "अल्मा कबूतरी" की रचना-प्रक्रिया का उल्लेख तो मिलता है, पर उसके बाद के उपन्यासों की कोई खास चर्चा नहीं मिलती है । अगर आत्मकथा का तीसरा खण्ड आता है, तो उसमें इन उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया का उल्लेख कदाचित् मिले । फिलहाल तो "अगनपाखी" शब्द का उल्लेख एक स्थान पर इस तरह आया है – "हां, इस टूटन का रुप अगनपाखी के राख हो जाने जैसा है ।"[145] और उसकी नायिका डा.आभा का भी उल्लेख-मात्र हुआ है - "अभी तो शुरुआत है, मोहिता का जीवन प्रभावित हुआ, आगे क्या होगा, जब शीलो, आभा और अल्मा आएंगी ।"[146]

इसका अभिप्राय यह है कि इन उपन्यासों कि रुपरेखा मैत्रेयीजी के मस्तिष्क में आकार ले रही थी । हमारे शोध-प्रबंध का विषय है : "मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन" । अतः प्रस्तुत अध्ययन में हमने अपनी चर्चा को "अल्मा कबूतरी" तक सीमित रखा है । हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बाद में आनेवाले उपन्यासों - जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है - का स्पिरीट भी वहीं रहेगा । इन उपन्यासों की आत्मा का सृजन तो कस्तूरी और मैत्रेयी इन दो महिलाओं द्वारा हुआ है । कस्तूरी क्या है, उसका संघर्ष, जीवट और जिजीविषा क्या है उसे हमने व्याख्यायित किया है और बाद में इसी कस्तूरी से मैत्रेयी नामक "गुड़िया" किस तरह से बाहर आयी है और कैसे-कैसे नारी पात्रों का निर्माण किया है उसे भी हम देख चुके हैं । इन उपन्यासों में "विजन" और "गुनाह-बेगुनाह" का देशगत (स्थानगत) परिवेश थोड़ा अलग है । "विजन" में नगरीय परिवेश है और "गुनाह-बेगुनाह" में हरियाणा है । इन दोनों के देशगत परिवेशों पर विचार करें तो "विजन" का परिवेश तो प्रकारान्तर से आत्मकथा में आ गया है क्योंकि सन् 1972 में डाक्टर साहब और मैत्रेयी दिल्ली आ जाते हैं और डाक्टर साहब "एम्स" में थे, फलतः मेडिकल जगत की जमीनी हकीकत से लेखिका राफ्ता-राफ्ता अवगत होती है । हरियाणा वाला अनुभव बाद के समय का है, अर्थात् सन् २००३ के बाद का । लेकिन इन सभी उपन्यासों में जो विचारधारा

अभिव्यंजित हुई है, वह कस्तूरी और मैत्रेयी के जीवनानुभवों की खराद पर चढ़कर हुई है। इसलिए प्रस्तुत अध्याय में हमने इन दोनों आत्मकथाओं से नि:सृत कतिपय विचारसूत्र दिए है, जो मैत्रेयी के समग्र साहित्य को समझने के लिए कारगर हो सकते हैं।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन के उपरान्त हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुंच सकते हैं -

(1) "विजन" और "गुनाह-बेगुनाह" इन दो उपन्यासों को छोड़कर, अन्य उपन्यासों का देशगत परिवेश बुंदेलखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों से हैं। इन गांवों से मैत्रेयी का बड़ा ही नजदीकी और भावपूर्ण सम्बन्ध रहा है।

(2) मैत्रेयी के उपन्यासों का कालगत परिवेश काफी विस्तृत है। ब्रिटिश शासन के अंतिम दौर से लेकर, स्वतंत्रता-प्राप्ति का दौर, उसके कुछ शुरुआती वर्षों का दौर, नेहरु शासन, इन्दिरा गांधी का दौर, बांग्लादेश के निर्माण वाला दौर, आपातकाल, इन्दिरा की हार, बाद में पुनः सत्ता के सूत्रों को सम्हालना, बाबरी-मस्जिद ध्वंस आदि घटनाओं का उल्लेख मैत्रेयी की इन दो आत्मकथाओं में भी हुआ है और उपन्यासों में भी। भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय की विभीषिका और बाबरी-मस्जिद ध्वंस के बाद के परिणामों से सम्बद्ध घटनाओं का आलेखन "इदन्नमम" और "चाक" इन दोनों उपन्यासों में हुआ है। "कही ईसुरी फाग" में गुजरात के नर-संहार का उल्लेख मिलता है। "गुनाह-बेगुनाह" में "खाप पंचायतों" और "ओनर-कीलिंग" की घटनाओं का भी यथार्थ चित्रण हुआ है। कहना न होगा कि इनका उल्लेख इनकी आत्मकथाओं में भी हुआ है।

(3) समसामयिक राजनीतिक घटनाओं के चित्रण में लेखिका का अभिगम प्रगतिवादी जीवन-मूल्यों से संपृक्त रहा है।

(4) भुवन, उर्वशी, मन्दा, सारंग, शीलो, आभा, अल्मा, रजरु, इला आदि मैत्रेयी की नायिकाओं में हमें जो संघर्ष, जीवट, जिजीविषा और जूझारुपन मिलता है वह कस्तूरी और मैत्रेयी के जीवनानुभवों का परिणाम है।

(5) ये नायिकाएं शुरु में कमजोर प्रतीत होती है। एक हद तक वे पुरुष के आश्रय-सुख में पलना चाहती है, परंतु पुरुषों के अन्याय और अत्याचार

की जब इन्तिहां आ जाती है, तब ये सिर उठाती है और फिर अपनी तमाम शक्ति के साथ, तमाम युक्तियों-प्रवृतियों के साथ संघर्ष करती है और पुरुष सत्ता को धूल चटाती हैं।

(6) इन नायिकाओं के सृजन से मैत्रेयी का स्त्री-विमर्श प्रत्यक्ष होता है। मैत्रेयी पुरुषों को स्त्री के शत्रु के रुप में नहीं देखती, बल्कि वह तो चाहती है कि स्त्री-पुरुष परस्परे पूरक बनकर चलें। उनमें बराबरी का भाव होना चाहिए। पति-पत्नी में भी दासी-मालिक वाला भाव न होकर मैत्रीभाव होना चाहिए।

(7) मैत्रेयी की नायिकाएं हर हाल में मानवीय मूल्यों की पक्षधर है। अन्याय और अत्याचार के खिलाफ वे खड़ी होती हैं। उनका यह अभिगम दृष्टिसंपन्न और सर्वांगपूर्ण है। ऐसा नहीं कि एक स्थान पर, स्त्री के पक्ष में, वह प्रगतिवादी-मानवतावादी हों, और समाज के दूसरे वर्ग जिसके साथ अन्याय होता हो उसके प्रति यथास्थितिवादी रवैया अपनाती हों। उनकी नायिकाएं जातिवादी संकीर्णता की भी विरोधी होती हैं। दलितों के प्रति उनका रवैया संवेदनापूर्ण पाया जाता है।

(8) मैत्रेयी की नायिकाएं कस्तूरी और मैत्रेयी का सम्मिश्रण हैं। न देवी, न कुल्टा, अपनी मानवीय शक्तियों और कमजोरियों के साथ। उनमें प्रेम है, काम-भाव है, और इसके लिए कहीं दुराव-छिपाव नहीं है। मैत्रेयी जहाँ स्त्री-पुरुष के शारीरिक मिलन का वर्णन करती हैं तो उसमें, उस दृश्य में, आकण्ठ, डूबकर। ऐसे दृश्य हमें "इदन्नमम", "चाक", "झूलानट", "अल्मा कबूतरी", "अगनपाखी" आदि सभी उपन्यासों में मिलते हैं। इनकी तुलना "कस्तूरी कुण्डल बसै" में वर्णित मैत्रेयीजी और डाक्टर साहब के प्रथम मिलन दृश्य से करें तो बात अधिक स्पष्ट हो जाती है।

(9) मैत्रेयी का स्त्री-विमर्श स्वच्छंदता और स्वैराचार को बढ़ाना देनेवाला बिलकुल नहीं है। उच्छृंखलता को उसमें कोई अवकाश नहीं है। "चाक" की सारंग अपने पति रंजीत को बेइन्तिहां चाहती है, और उन दोनों को लेकर प्रसन्न-दाम्पत्य के कुछ अच्छे चित्र भी उपन्यास में मिलते हैं, परंतु रंजीत जब अन्याय और अत्याचार का दामन थामने लगता है और गलत जीवन-मूल्यों से जुड़ने लगता है, तब सारंग को उससे वितृष्णा होने लगती है। उसका श्रीधर के प्रति समर्पण उसी भाव

का द्योतक है। ठीक उसी तरह "झूलानट" की शीलो भी अपने पति को अनुकूल होने की ओर अनुकूल बनाने की हर संभव कोशिश करती है, परंतु जब उसमें सफल नहीं होती जब उसे ज्ञात होता है कि उसके पति ने शहर में किसी दूसरी स्त्री को रख लिया है तब वह अपने देवर से सम्बन्ध बांधती है।

(10) मैत्रेयी का अपने पात्रों के साथ जो जुड़ाव है, विशेषतः "चाक" की सारंग के साथ जो समानता दिखती है, उससे किसीको इस निर्णय पर पहुंचने की छूट नहीं मिल सकती कि मैत्रेयी के अपने जीवन में इस प्रकार का कोई स्खलन होगा। दोनों आत्मकथाओं को खंगाल जाने पर कहीं भी इस प्रकार का कोई उल्लेख मिलता नहीं है। मैत्रेयी और डाक्टर साहब में लाख लड़ाई-झगड़े हुए होंगे, अनबन हुई होगी, व्यंग्य-वर्षा हुई होगी, असहमतियां रही होंगी, पर डा.शर्मा में जो एक अद्भुत अनुकूलन साध लेने की कला है, उसके चलते दोनों के दाम्पत्य के जीवन में उस प्रकार कोई बात नहीं आ पायी है। दोनों आत्मकथाओं में डाक्टर साहब का "जानम, जानम" ही गूंजता रहा है।

(11) मैत्रेयी जी प्रारंभ में डरपोक और भीरु रही है, कमजोर रही है, परंतु शनैः शनैः ही उनका आत्मविश्वास बढ़ता गया है जिसे हम "गुड़िया भीतर गुड़िया" के अंत भाग में महसूस करते हैं, ठीक उसी प्रकार उनकी नायिकाओं के साथ भी हुआ है। शुरु में कमजोर पर बाद में प्रचंड और शक्तिमान।

(12) मैत्रेयीजी के बुजुर्ग पात्रों में पंचमसिंह दददा (इदन्नमम), गजाधर बाबू (चाक) आदि गांधीयुग के संस्कारों से युक्त प्रतीत होते हैं; क्योंकि मैत्रेयीजी के दादाजी मेवाराम, पालक पिता चिमनसिंह यादव, नम्बरदार जैसे कुछ उदारमना बुजुर्ग पात्रों का अनुभव मैत्रेयी को हुआ है।

(13) लोकबोली, लोकगीत, फाग, शादी-ब्याह के गीत, तीज-त्यौहार के गीत, लोगों के रीति-रिवाज और मान्यताएं इन सबका यथार्थ चित्रण मैत्रेयी में मिलता है क्योंकि उनके पास खेरापतिन दादी, कलावती चाची, इसुरिया, लौंगसिरी बीबी आदि का संपर्क-लाभ है।

(14) राजनीति का अपराधीकरण, माफियागिरी, गुण्डागर्दी, खादी और खाकी का मिल जाना और दोनों का अपराधीकरण, साम्प्रदायिक ताकतों का बढ़ना, खाप पंचायतो के अमानवीय फतवे, नव जागरण की चेतना का

मिटते जाना जैसी बातों की चिन्ता मैत्रेयीजी को खाये जा रही है जिसे हम उनके उपन्यासों में देख सकते हैं।

(15) उनके उपन्यास ही नहीं, उनके समग्र साहित्य को बेहतरीन तरीके से समझने के लिए उनकी ये दो आत्मकथाएं स्रोत-सामग्री का काम करती है।

=x=

: सन्दर्भानुक्रम :

(1) कस्तूरी कुण्डल बसै : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. 308 ।

(2) दृष्टव्य : गुड़िया भीतर गुड़िया : मैत्रेयी पुष्पम : पृ. 341 ।

(3) से (5) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 345, 345, 341 ।

(6) हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएं : डा.सरजूप्रसाद मिश्र : पृ. 120 ।

(7) से (24) : दृष्टव्य : कस्तूरी कुण्डल बसै : पृ. 13, 14, 19, 24, 25, 33, 34-37, 40, 43, 44-45, 46-57, 134, 135-150, 151-207, 208-240, 241-260, 261-290, 291-332 ।

(25) से (34) : कस्तूरी कुण्डल बसै : पृ. क्रमशः 187, 195, 225, 242, 250, 288, 296, 297, 309, 303 ।

(35) दृष्टव्य : कस्तूरी कुण्डल बसै : भूमिका से ।

(36) गुड़िया भीतर गुड़िया : "निवेदन" से ।

(37) वही ।

(38) हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएं : पृ. 126 ।

(39) से (43) : दृष्टव्य : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 211, 222, 220, 334, 334-337 ।

(44) हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएं : पृ. 128 ।

(45) से (60) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 134, 140-141, 149, 155, 160-161, 18, 25, 41, 47, 59, 63, 67, 74, 82, 94, 111 ।

(61) से (80) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 119-120, 128, 172, 179, 191, 197, 205, 206, 215, 248, 251, 257, 259, 263, 273, 286, 301, 305, 306, 179 ।

(81) हिन्दी उपन्यास का इतिहास : डा.गोपालराय : पृ. 389 ।

(82) दृष्टव्य : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 179 ।

(83) से (87) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 214, 213, 214, 215, 215 ।

(88) निर्मला : प्रेमचंद : पृ. 102 (89) वही : पृ. 102 ।

(90) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 215 ।

(91) टाइम्स ओफ इण्डिया : दिनांक 1-1-2013 ।

(92) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 216 ।

(93) इदन्नमम : मैत्रेयी पुष्पा : भूमिका से तथा गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 217 ।

(94) से (99) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 217, 218-219, 220, 221, 224, 225 ।

(100) कस्तूरी कुण्डल बसै : पृ. 190 ।

(101) दृष्टव्य : वही : पृ. 197 ।

(102) से (103) : इदन्नमम : पृ. क्रमशः 139, 107 ।

(104) सितारों के खेल : उपेन्द्रनाथ अश्क : प्रकाशकीय से ।

(105) चाक : मैत्रेयी पुष्पा : द्वितीय मुखपृष्ठ से ।

(106) से (108) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 231, 239, 240 ।

(109) चाक : पृ. 104 ।

(110) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 241 ।

(111) चाक : पृ. 104 ।

(112) इदन्नमम : पृ. 105 ।

(113) से (117) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 241, 241, 232, 232, 232 ।

(118) दृष्टव्य : कहानी : फैसला : मैत्रेयी पुष्पा : प्रतिनिधि कहानियां : मैत्रेयी : पृ. 13-26 ।

(119) से (123) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 251, 251, 252, 242, 247 ।

(124) "मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य" : सं. डा.दया दीक्षित : पृ. 32 ।

(125) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 248 ।

(126) झूलानट : मैत्रेयी पुष्पा : भूमिका से ।

(127) दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास का इतिहास : डा.गोपाल राय : पृ. 389 ।

(128) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 233 ।

(129) दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डा.त्रिभुवनसिंह : पृ. 762 ।

(130) दृष्टव्य : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 265 ।

(131) जोयस कैरी : राइटर्स एट वर्क : फर्स्ट सीरिज (1958) : पृ. 60 ।

(132) लेख - "देहबाजार और नारी-विमर्श" : डा.किशोरसिंह राव : ग्रन्थ – "हिन्दी महिला कथाकारों के साहित्य में नारी-विमर्श : सम्पादक द्वय : डा.दिलीप मेहरा तथा डा.प्रतीक्षा पटेल : पृ. 308-312 ।

(133) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 254 ।

(134) और (135) : वही : पृ. क्रमशः 254, 254 ।

(136) : मेरी तैतीस कहानियां : शैलेश मटियानी : भूमिका से ।

(137) "हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास" : डा.पारुकान्त देसाई : भूमिका से ।

(138) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 281 ।

(139) दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास का इतिहास : डा.गोपाल राय : पृ. 390 ।

(140) से (146) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 277, 277, 278, 282, 333, 246, 248 ।

===== xxxxx =====